पृथ्वीराज रासो

तथा

अन्य निबन्ध

लेखक

डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया

एम. ए., (पी–एच. डी.), साहित्यरत्न

निदेशक

राजस्थान साहित्य-अकादमी

उदयपुर

राजस्थान प्रकाशन

त्रिपोलिया बाजार, जयपुर-२

* प्रकाशक

राजस्थान प्रकाशन,
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर–२

* मूल्य

छः रुपये पचास पैसे मात्र

* संस्करण

प्रथम, १९६९

* मुद्रक

राजकमल प्रिन्टर्स,
गोधों का रास्ता,
जयपुर–३

प्रस्तावना

इस पुस्तक में समय-समय पर लिखित मेरे कतिपय निबन्ध प्रकाशित किये जा रहे हैं। "राजस्थान की रस-धारा" नाम से मेरे प्रारम्भिक निबन्धों का प्रथम सङ्कलन सन् १९५४ ई० में प्रकाशित हुआ था, जिसकी अनेक विद्वज्जनों और स्नेही मित्रों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। विश्वास है कि प्रकाशन-क्रम में अपनी इस इक्कीसवीं पुस्तक को भी प्रिय पाठक उसी प्रेमभाव से अपनावेंगे।

प्रस्तुत निबन्धों में राजस्थान में रचित हिन्दी और राजस्थानी साहित्य-सम्बन्धी कतिपय महत्वपूर्ण रचनाओं एवं विषयों पर लिखा गया है। इनके लेखन में मुख्य दृष्टिकोण यही रहा है कि सम्बन्धित विषय में प्राप्त ज्ञातव्य का संक्षेप में उल्लेख करते हुए अनुसन्धान में प्राप्त नवीन तथ्यों का विवेचन भी किया जाय। इस प्रकार इन निबन्धों को सम्पूर्ण रूप में उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इन निबन्धों के लेखन में अनेक विद्वज्जनों, सम्पादक-मित्रों और स्नेही जनों का सहयोग रहा है। मान्यवर श्री झुन्नीलाल जी, राजस्थान-प्रकाशन, जयपुर ने इस पुस्तक को तत्परतापूर्वक प्रकाशित किया है। इन सभी व्यक्तियों का लेखक आभारी है।

आशा है कि मेरे अन्य निबन्ध भी शीघ्र ही पुस्तक रूप में प्रिय पाठकों की सेवा में पहुंचेंगे। इनके द्वारा प्रिय पाठक आंशिक रूप में भी लाभान्वित हुए तो लेखक अपने श्रम को सार्थक समझेगा।

राजस्थान साहित्य-अकादमी, उदयपुर।
(दीपावली) २०२५ वि.

पुरुषोत्तम लाल मेनारिया

अनुक्रम

●

—:०:—

: १ :

पृथ्वीराज रासो

महाकवि चन्द कृत पृथ्वीराज चौहान विषयक रचनाओं के प्राचीनतम प्रमाण ४ छप्पय छन्दों के रूपों में मुनि श्री जिनविजय जी, पुरातत्वाचार्य को वि. सं. १२९० से १५२८ तक रचित छन्दों के वि० सं० १५२८ में लिपिबद्ध हुए "पुरातन प्रबन्ध-संग्रह" में उपलब्ध हुए[1] और इन छन्दों में से तीन छन्द काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित संस्करण में भी परिवर्तित रूप में श्री मुनिजी ने खोज निकाले।

इन छप्पयों से सिद्ध होता है कि कवि चन्द ने पृथ्वीराज चौहान के विषय में छन्द लिखे थे और वे वि० सं० १५२८ तक लोकप्रिय हो चुके थे एवं इन छन्दों को संग्रह-ग्रन्थों में मान्यता मिलने लगी थी।

पृथ्वीराज रासो की लगभग ६० प्रतियां अब तक उपलब्ध हो चुकी हैं[2] और इन सब में आकार-प्रकार एवं रूप की दृष्टि से अनेक भेद हैं। पृथ्वीराज रासो के रूपान्तरों को चार भागों में बांटा गया है :—(१) बृहत् रूपान्तर, (२) मध्यम रूपान्तर, (३) लघु रूपान्तर और (४) लघुतम रूपान्तर।[3]

बृहत् रूपान्तर की प्रतियां वि० सं० १७६० और उसके बाद की हैं। इस रूपान्तर की प्राचीनतम प्रति वि० सं० १७६० की है और राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान की उदयपुर शाखा में सरस्वती भण्डार के संग्रह में सुरक्षित है। बृहत् रूपान्तर महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि० सं० १७६७) की आज्ञा से तैयार किया गया था। बृहत् रूपान्तर की उक्त प्रति के अन्त में अग्रलिखित छप्पय भी प्राप्त होता है—

---

१. सिंघी जैन ग्रन्थ माला, संख्या २, भारतीय विद्या भवन, बम्बई, पृष्ठ ८६, ८८ और ८९।

२. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पं० मोतीलाल जी मेनारिया पृष्ठ ४४, ४५।

३. पं० नरोत्तमदासजी स्वामी, राजस्थान भारती, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट बीकानेर, अप्रेल सन् १९४६, पृष्ठ ३-४।

गुन मनियन रस पोइ, चन्द कवियन दिद्धिय।
छन्द गुनी तै तुट्टि मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय ॥
देस देस विष्षरिय, मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत, आस बिन आलय आवय ॥
चित्रकोट रांन अमरेस त्रप, हित श्री मुख आयस दयौ।
गुन बीन बीन करुना उदधि, लखि रासौ उद्दिम कियौ ॥

उक्त छप्पय से स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज रासो के छन्द मूल ग्रन्थ से अलग हो गये थे, जैसे कोई माला टूट कर उसकी मणियां बिखर जाती हैं। महाराणा अमरसिंह की आज्ञा से देश-देश में प्रचलित इन छन्दों को एकत्रित कर क्रमबद्ध किया गया। नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी से प्रकाशित संस्करण वृहत् रूपान्तर पर आधारित है। अब आवश्यकता यह है कि प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर पृथ्वीराज रासो का एक वृहत्तम संस्करण तैयार किया जाय जिससे इस महान् कृति का यथोचित मूल्यांकन हो सके। सं० १७६० में किये गये उक्त संकलन में अनेक छन्दों का छूट जाना संभव है। पृथ्वीराज रासो का पूर्ण रूप सामने आना आवश्यक है। अवश्य ही इसमें प्राचीन काल में किये गये अनेक कवियों के क्षेपक होंगे किन्तु इन क्षेपकों को भी काव्य-सीमा से बाहर नहीं रखा जा सकता।

पृथ्वीराज रासो के मध्यम रूपान्तर वि० सं० १७२३ और १७३६-१७४० में लिपिबद्ध हुए हैं। वृहत् रूपान्तरों में अध्यायों का नाम "सम्यौ" है किन्तु मध्यम रूपांतरों में इनको "प्रस्ताव" कहा गया है।

लधु और लघुत्तम रूपान्तरों की प्रतियां १७वीं शताब्दी में लिपिबद्ध हुई हैं। लघु रूपान्तरों में अध्यायों को 'खण्ड' कहा गया है और लघुत्तम रूपान्तरों की प्रतियां अध्यायों में विभक्त नहीं है। पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति धारणोज में वि० सं० १६६७ की उपलब्ध हुई है और यह राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान के केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर में सुरक्षित है। इस प्रति का पुष्पिका लेख इस प्रकार है :—

"इत्ति श्री कवि भट्ट लेख चंदवरदाई कृत राजा श्री प्रिथीराज चहूआण रासउ रसाल सम्पूर्ण ॥ गंथाग्र १३०० सिलोक छंद। श्रेअस्तु। लेखक वाचकयो। याहशं पुस्तकं हष्टां ताहशं लिखितं मया। यदि शुद्धम् अशुद्धं वा मम दोषो न दीयते ॥ श्री रस्तु ॥ श्री कल्याण ६६॥ संवत १६६७ वर्षे शाके १५३२ प्रवत्तमाने आसाढ़ मासे शुक्ल पक्षे पंचमी तिथौ महाराजाधिराज महाराज श्रीकल्याणमलजी तत्पुत्र

राजा श्री माणजी तत्पुत्र राजा श्रीभगवानदासजी पठनार्थ श्रेय कल्याण श्री शुभं भवतु।"

उक्त प्रति से और पुरातन प्रबन्ध संग्रह से महाकवि चन्द द्वारा पृथ्वीराज रासो का १६ वीं सदी से पहले रचा जाना सिद्ध होता है। लघुत्तम रूपान्तर बृहत् पृथ्वीराज रासो के संक्षिप्त रूप भी हो सकते हैं। राजस्थान में विशाल काव्य-ग्रन्थों को संक्षिप्त रूप देने की परम्परा रही है। उदाहरणस्वरूप 'विड़दसिणगार' और 'जसवंतभूषण' नामक काव्यों को लिया जा सकता है। 'विड़दसिणगार' १२५ छन्दों का काव्य है और यह चारण कवि करणीदान कृत "सूरज प्रकास" नामक साढ़े सात हजार छन्दों में रचित महाकाव्य का संक्षिप्त रूप है। इसी प्रकार जसवंत भूषण नामक काव्य कविराज मुरारीदान कृत जसवंत जसोभूषण का संक्षिप्त रूप है।

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने पृथ्वीराज रासो के लघुत्तम रूपान्तर को मूल के समीप अनुमानित करते हुए लिखा है—"मंगलाचरण और कथा की एक संक्षिप्त भूमिका के अनन्तर जयचन्द के राजसूय और संयोगिता के पृथ्वीराज सम्बन्धी प्रेमानुष्ठान विषयक विवरणों से रचना प्रारम्भ हुई होगी। तदनन्तर उसमें मंत्री कयमास के वध, पृथ्वीराज के कन्नोज-गमन में उसके प्रावकथन संयोगिता-परिणय, पृथ्वीराज जयचन्द-युद्ध और दिल्ली आकर पृथ्वीराज-संयोगिता के केलि-विलास की कथाएं उसके पूर्वार्द्ध की सृष्टि करती रही होंगी और उत्तरार्द्ध में उस केलि-विलास से चन्द के द्वारा किये गये पृथ्वीराज के उद्बोधन शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज के (द्वितीय) युद्ध तथा शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के अन्त की कथाएं रही होंगी। इस मूल रूप का आकार लगभग ३६० रूपकों का रहा होगा।"[1]

आचार्य पं० हजारी प्रसादजी द्विवेदी के मतानुसार मूल रासो की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में होनी चाहिये अतएव शुक-शुकी संवादों से युक्त प्रसंग ही प्रचलित रासो की प्रतियों में प्रामाणिक है—शुक-शुकी के संवाद रूप में कथा कहने की योजना तत्काल-प्रचलित नियमों के अनुकूल तो थी ही, इसलिये भी आवश्यक थी कि उसमें चन्द कवि स्वयं एक पात्र है। किसी दूसरे के मुख से ही अपने बारे में कुछ कहलवाना कवि को उचित लगा होगा।"[2]

---

१. हिन्दी साहित्य कोष, भाग–२, ज्ञान मंडल वाराणसी, पृ० ३२१।
२. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना पृ० ६५।

स्व० कविराव मोहनसिंह के मतानुसार पृथ्वीराज रासो में संस्कृत वृत्तों के अतिरिक्त साटक, गाथा, दोहा और कवित्त (छप्पय) का ही समावेश होना चाहिये क्योंकि कवि चंद ने इन्हीं छन्दों के लेखन का संकेत किया है—

छन्द प्रबन्ध कवित्त जाति, साटक, गाह, दुअत्थ।
लहु गुर मंडित खंडियहि, पिंगल अमर भरत्थ॥[1]

उक्त आधार पर कविरावजी ने पृथ्वीराज रासो का सम्पादन भी किया[2] किन्तु क्षेपककर्ताओं ने उक्त छन्द भी अवश्य रासो में जोड़े होंगे। अतएव कविराव जी द्वारा रासो पाठ-ग्रहण एवं सम्पादन के लिये अपनाया गया आधार निर्दोष नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आचार्य प० हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा बताये गये शुक-शुकी संवादों में भी क्षेपक जुड़ना स्वाभाविक है।

पृथ्वीराज रासो का उल्लेख उदयपुर के निकट राजसमुद्र नामक विशाल सरोवर के बांध पर पच्चीस शिलाओं पर उत्कीर्ण "राजप्रशस्ति-महाकाव्य" में इस प्रकार उपलब्ध होता है—

भाषारासापुस्तकेस्य युद्धस्योक्तिस्तिविस्तर:।[3]

राजप्रशस्ति महाकाव्य का कर्त्ता झोटिंग भट्ट था, जिसने इसका लेखन-कार्य वि० सं १७१८ में प्रारंभ कर वि० सं० १७३२ में पूर्ण किया था।[4]

पृथ्वीराज रासो का उल्लेख वि० सं० १७४७ में लिखित "जसवंत-उद्योत" नामक काव्य में भी हुआ है —

चंद भाट की चाकरी, पृथ्वीराज विचारि।
संग सोरह सामंत ले, गयो गुपत अनुहारि।
संयोगिता कुमारिका, वर्‌यौ जहाँ चोहानु।
तहीं पिथौरा कह दयो, राइ अभै जिय दानु।
रासौ पृथ्वीराज कौ, तहां बहुत विस्तारु।
मैं वरन्यौ संछेप ही, सकल कथा को सारु।

—जसवन्त उद्योत[5]

---

१. प्रथम समय।
२. प्रकाशित, राजस्थान विद्यापीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर।
३. सर्ग ३, श्लो० २७।
४. ओझा, उदयपुर राज्य का इतिहास। पृष्ठ ५७०, ५७२, ५७७।
५. अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर की प्रति।

तदुपरान्त कवि यदुनाथ "कृत वृत्तविलास" नामक काव्य में रासो का उल्लेख मिलता है—

एक लाख रासो कियो, सहस पंच परिमान।
पृथ्वीराज नृप को सुजसु, जाहर सकल जिहान ॥[१]

वल्लभ कृत कुंतीप्रसन्नाख्यान में रासो का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

भारत समुं प्रमाण, रासा ना तमासा भालो।
कर्या भारत बेत्रण, आरत उवेखिये।
पृथ्वीश प्रशंसा कथी, मानशे नुं मोधु तेमां।
प्रेमानन्द नी कविता, सविता सी पेखिए॥
ब्राह्मण थी भाट थया, वंशज विधि ना आ तो।
कवीश्वर ना पिता थी, चंद मंद देखिये॥[२]

पृथ्वीराज रासो के उक्त उल्लेख १८वीं शताब्दी के विक्रमी हैं। पृथ्वीराज रासो की प्राप्त अधिकांश प्रतियां भी १८वीं शताब्दी विक्रमी की प्राप्त होती हैं। इस आधार पर पं० मोतीलालजी मेनारिया ने पृथ्वीराज रासो का निर्माण काल १८वीं शताब्दी विक्रमी माना है। इनका मत है कि विक्रमी स० १७०० से पूर्व की अधिकांश प्रतियों में सम्वत् और तिथि के साथ वार का उल्लेख नहीं है और किसी प्रति में वार का लेख है तो वह गणना के अनुसार सही नहीं ज्ञात होता। इसलिये १७०० से पूर्व की प्रतियां जाली हैं। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र के बांध पर शिलालेख के रूप में लगवाने के लिये राजप्रशस्ति महाकाव्य का निर्माण प्रारंभ करवाया। तब "चंद का कोई वंशज अथवा उसकी जाति का कोई दूसरा व्यक्ति रासो लिखकर सामने लाया प्रतीत होता है। यदि यह व्यक्ति रासो को अपने नाम से प्रचारित करता तो लोग उसे प्राचीन इतिहास के लिये अनुपयोगी समझते और उसमें वर्णित बातें उसे सप्रमाण सिद्ध भी करनी पड़ती। अतएव चंद रचित बतलाकर उसने इस सारे झगड़े का अन्त कर दिया। चंद का नाम लोकप्रिय व प्रचलित था ही। लोगों को उसकी बात पर विश्वास भी हो गया।"[३] पं० मोतीलालजी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो की प्राचीनतम प्रति महाराणा

---

१. रचना काल सं १८००, डॉ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का निबन्ध, कोशोत्सव स्मारक संग्रह, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

२. रचनाकाल सं० १८३८, श्री कन्हैयालाल माणकलाल मुंशी, गुजरात एन्ड इट्स लिटरेचर, पृ० २००।

३. राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर, पृ ४०।

अमर सिंह (द्वितीय) (१७५५–६६) के शासनकाल में वि० सं० १७६० में लिखी गयी। यह प्रति राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान की उदयपुर-शाखा में सरस्वती-भंडार संग्रह में उपलब्ध है, इसका पुष्पिका लेख निम्नलिखित है—

"सं० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवर्त्तमाने उत्तरायणगते श्री सूर्ये शिखिर ऋतौ सन्मांगल्यप्रद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोमवासरे। श्री उदयपुर मध्ये हिन्दू-पति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा श्री अमरसिंह जी विजय राज्ये। मेदपाट ज्ञातीय भट्ट गोवर्धन सुतेन रूपजी ना लिखित चंद वरदाई कृत पुस्तक।"
इसी प्रति के अन्त में एक छप्पय इस प्रकार लिखित है—

मिलि पंकज गन उदधि करद कागद कातरनी।
कोटि कवि काजलह कमल कटिक तै करनी।
इहि तिथि संख्या गुनित कहै कक्का कवियानै।
इहि श्रम लेखनहार भेद भेदै सोई जानै।
इन कष्ट ग्रंथ पूरन करय, जन वड़ या दुख ना लहय।
पालियै जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखिक बिनती करय॥

उक्त छप्पय का अर्थ करते हुए डॉ० श्यामसुन्दर दास ने लिखा है "यदि पकज से पंकजनाल (१), गन को गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल होता है, मान ले तो सं० १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास, तिथि आदि होगी, पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन सं० १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा, इससे कई बातों का सामंजस्य हो जायेगा।"[1]

उक्त मत के विपरीत "मिली पंकज गन उदधि करद" का अर्थ उदधि को ७ और करद (खंग) को[1] मानते हुए वि० सं० १७६० किया गया है और अमरेश नृप से अभिप्राय अमरसिंह द्वितीय लिया गया है जिनका शासन काल १७६० था।[2] साथ ही "कातरनी" का अर्थ दो करते हुए रासो का निर्माण काल १२०० बताया गया है और महाराणा अमरसिंह के समय इसकी एक प्रति का लिपिबद्ध होना सूचित किया गया है।[3]

---

१. ओरियटंल कान्फ्रेंस सं० १९९० के हिन्दी विभाग में दिया गया भाषण।
२. पं० मोतीलालजी मेनारिया, राजस्थान का पिंगल साहित्य, हितैषी पुस्तक भण्डार, उदयपुर पृ० ४७।
३. कविराव मोहनसिंह का निबंध, पृथ्वीराज रासो की विवेचना, राजस्थान, विद्यापीठ, उदयपुर।

वास्तव में उक्त छन्द लिपिकार के प्रतिलेखन में किये गये परिश्रम को भी सूचित करता है। पंकजगन से अर्थ हाथ की उंगलिया ओर उदधि अर्थ दवात है। करद, कागद, कातरनी, काजल कटि आदि के अर्थ स्पष्ट हैं। उक्त शब्द क से प्रारंभ होने वाले हैं और नागरी लिपि की वर्णमाला भी कक्का कही जाती है। लिपिकार कहता है कि यह प्रति कष्टपूर्वक लिखी गयी है इसलिये इसकी यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये।

डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, कविराजा श्यामलदास और कविराज मुरारीदान आदि ने पृथ्वीराज रासो में ऐतिहासिक दृष्टि से अनेक त्रुटियां बताते हुए इसको जाली लिखा है। इतिहासकारों में से सर्वप्रथम कर्नल जेम्स टॉड का ध्यान पृथ्वीराज रासो की ओर आकर्षित हुआ और उसने निम्नलिखित शब्दों में ग्रंथ की प्रशंसा की—

"चंद का यह ग्रंथ अपने समय का एक विश्वमुखीन इतिहास है। इसके ६४ सर्गों में पृथ्वीराज के पराक्रम-संबन्धी एक लाख छन्द हैं जिनमें राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित घराने के पूर्व पुरुषों का कुछ न कुछ लेखा मिलता है। इसलिये राजपूत नाम का कुछ भी अभिमान रखने वाली जातियां इसे अपने संग्रहालयों में रखती हैं और इसके द्वारा अपने उन वीर पुरखाओं का पता लगाती है जिन्होंने किर्मान के दर्रे में जब कि युद्ध के बादल हिमालय से हिंदोस्तान तक के मैदानों में गड़गड़ा रहे थे, युद्ध तरंगों का जल-पान किया था। पृथ्वीराज के युद्धों, उनकी संधियों, उनके वंशवर्ती अनेक शक्तिशाली राजाओं, उनके निवास स्थानों तथा वंशवालियों ने चंद के इस काव्य को इतिहास एवं भूतत्व का एक अमूल्य ज्ञापन बना दिया है तथा देव-गाथाओं, रीति-व्यवहारों व मनुष्यों के मन के इतिहासों का भी वह एक कोषागार है।"[१]

जेम्स टॉड ने रासो के ३००० छन्दों का अंग्रेजी अनुवाद भी किया।[२] जेम्स टॉड के अनुसार फ्रांसीसी विद्वान गार्सीद तासी ने भी अपने "इस्तवार द ला लितरात्यूर इंदुई ए इंदुस्तानी" (सन् १८३९ ई०) नामक प्रसिद्ध ग्रंथ में रासो की प्रशंसा करते हुए इसको १२ वीं शताब्दी की प्रति बताया। राबर्ट लिज नाम रूसी विद्वान ने रासो के एक खण्ड का अनुवाद किया।[3] तदुपरान्त एफ० एस, ग्राउस, जॉन बीम्स

---

१. दि एनल्स ऍंड ऍंटिग्विीज ऑव राजस्थान, (प्रथम संस्करण) सन् १८२९ पृ० २५४१।

२ वही पृ० २५६।

३. डॉ० जार्ज ग्रियर्सन, "दी माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान" पृ० ४।

और रूडाल्फ हार्नली प्रभृति विद्वानों ने जेम्स टॉड का समर्थन करते हुए अनेक लेख लिखे और उसका अंग्रेजी अनुवाद छपवाना प्रारंभ किया।[1]

ऐतिहासिकता की दृष्टि से रासो का सर्वप्रथम विरोध उदयपुर के कविराजा श्यामलदास ने किया और इस विषय में पृथ्वीराज-रहस्य की नवीनता नामक निबन्ध हिन्दी में सं० १९४२ में तथा अंग्रेजी में सन् १८८६ में प्रकाशित करवाया।[2] कविराजाजी ने अपने इस निन्बध में निम्नलिखित तथ्यों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया—

(१) पृथ्वीराज रासो पृथ्वीराज चौहान के समय से बहुत बाद में बना है।[3]

(२) पृथ्वीराज रासो का कर्त्ता मेवाड़ के बेदला अथवा कोठारिया के चौहान जागीरदारों का आश्रित कोई भाट था जिसने अपनी जाति के बड़प्पन के लिये इसकी रचना की।[4]

(३) पृथ्वीराज रासो इतिहास की दृष्टि से दोषपूर्ण और अनुपयोगी है।[5]

(४) पृथ्वीराज रासो का निर्माण सं० १६४० और १६७० के मध्यकाल में हुआ।[6]

उदयपुर के पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने "पृथ्वीराज रासो की प्रथम संरक्षा" नामक पुस्तिका तैयार कर सं० १९४४ में प्रकाशित की। पण्ड्याजी ने यह बताने का प्रयत्न किया कि रासो में अनन्द विक्रम सम्वत् का प्रयोग हुआ है, जिसमें ९० या ९१ वर्ष जोड़ने से विशुद्ध वि० सं० निकलता है। पण्ड्याजी की यह कल्पना मात्र थी और कसौटी पर खरी नहीं उत्तरी।[7]

रासो-सम्बन्धी उक्त विवाद में अनेक विद्वान तटस्थ रहे क्योंकि रासो कवि चन्द नामक भाट का लिखा हुआ है और कविराजा शामलदास तथा मुरारीदान जैसे चारण

---

१. सेंटीनरी रिव्यू ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल, सन् १७८४–१८८३, परिशिष्ट सी० पृ० १०५ १६७।
२. जनरल ऑव दि० एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, संख्या १, भाग–१।
३. पृथ्वीराज रहस्य की नवीनता, पृ० २।
४. वही, पृ० ११।
५. वही, पृष्ठ ८७।
६. वही, पृष्ठ ७५।
७. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १, सं० १९९७ पृ० ३७७–४५९।

विद्वान इसके विरोधी थे और इस विवाद को चारणों और भाटों के परम्परागत मन-मुटाव का परिणाम समझा गया । इसी बीच जर्मन विद्वान प्रो० बुलर को काश्मीर में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज करते हुए कवि जयानकक्रुत पृथ्वीराज विजय नामक महाकाव्य की भोज-पत्र पर लिखित प्रति प्राप्त हुई । इस प्रति का अध्ययन कर प्रो० बुलर ने अप्रेल सन् १८९३ ई० में एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता को पत्र लिखा—

"मेरे एक शिष्य मि० जेम्स मारीसन ने संस्कृत "पृथ्वीराज विजय" का अध्ययन कर लिया है जिसे मैंने जोनराज की टीका के साथ (जो सन् १४५०–७५ के बीच लिखी गई थी) सन् १८७५ में काश्मीर में प्राप्त किया था । ग्रंथकार निश्चित रूप में पृथ्वीराज का समकालीन था और उसके राज-कवियों में एक था । वह सम्भवतः काश्मीरी था और अच्छा कवि और पंडित भी था । उसके द्वारा वर्णित चौहानों का वर्णन चन्द के वर्णन मे प्रत्येक विवरण में भिन्न है और वह वि० सं० १०३० और १२२५ के शिलालेखों से मिलता है । पृथ्वीराज का वंश-वर्णन उसी प्रकार है जैसा हम इन शिलालेखों में पाते हैं । अन्य वहुत से विवरण जो 'विजय' से मिलने हैं अन्य साक्षियों से भी मिलते हैं । (जैसे माल्वा और गुजरात के शिलालेख) ।

मैं समझता हूं इस काल के इतिहास पर पुनर्विचार की आवश्यकता है और चन्द का रासो अप्रकाशित ही रहने दिया जाय । वह जाली है । जैसा जोधपुर के मुरारीदान और उदयपुर के श्यामलदान ने वहुत पहले कहा है । 'विजय' के अनुसार पृथ्वीराज के वन्दीराज या प्रधान कवि का नाम पृथ्वीभट्ट था न कि चन्द-वरदायी ।"[1]

डॉ० बुलर ने पृथ्वीराज-विजय का विस्तृत विवरण अपनी रिपोर्ट में प्रकाशित करते हुए इसकी ऐतिहासिकता की दृष्टि से प्रामाणिकता सिद्ध की ।[2] डॉ बुलर के पत्र से प्रभावित होकर एशियाटिक सोसाइटी ने रासो का प्रकाशन स्थगित कर दिया ।

---

१. प्रोसीडिंग्स ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, फार एप्रिल १८९३ ।

२. डिटेल्ड रिपोर्ट ऑव ए टूअर इन सर्च ऑव संस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस मेड इन काश्मीर, राजपूताना, सेंट्रल इन्डिया ।

डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने ऐतिहासिक दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की परीक्षा की और इसको वि० सं० १६०० के लगभग की रचना बताया।[1]

डॉ० ओझा ने रासो की प्रामाणिकता पर मुख्यत: निम्नलिखित आरोप लगाये—

(१) उसमें इतिहास-सम्बन्धी अनेक भ्रान्तियां है जो शिलालेखों और पृथ्वीराज विजय से सिद्ध हो जाती है।

(२) उसमें तिथियां बिल्कुल अशुद्ध दी गई हैं।

(३) उसमें अरबी-फारसी के शब्द बहुत हैं जो चन्द के समय किसी प्रकार भी व्यवहार में नहीं लाये जा सकते थे। ऐसे शब्द प्राय: दस प्रतिशत हैं।

(४) भाषा अनुस्वारांत शब्दों से भरी हुई है और उसमें कोई स्थिरता नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश की शब्द-रूपावली का कोई विचार ही नहीं है और शब्दों की रूपावली और नये पुराने ढंग की विभक्तियां बुरी तरह से मिली हुई हैं।

डॉ० ओझा के विरोध में बाबू श्यामसुन्दर दास ने और मिश्र-बन्धुओं ने अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये किन्तु ये तर्क की कसौटी पर खरे नहीं उतरते। डॉ० रामकुमार वर्मा ने भी सतर्क कारण बताते हुए पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक लिखा है।[2]

पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन इतिहास की दृष्टि से नहीं वरन् एक महाकाव्य की दृष्टि से ही किया जाना चाहिये।

रासो, रासा और रासउ आदि शब्दों के मूल में 'रास' है जिसको ध्रुपद आदि रागों में गेय बताया गया है:—

"तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्मै मानं च बहुदात्।"[3]

संलग्न रासो, रासा-और रासउ आदि से प्रकट होता है कि वीसलदेवरास और अन्य अनेक रास परक काव्यों की भांति पृथ्वीराज रासो भी मूलत: एक गेय-काव्य रहा और गेय होने से यह काव्य कालान्तर में विकसित होता गया। इस प्रकार "पृथ्वीराज रासो" वास्तव में एक विकसित महाकाव्य है।

---

१. (क) पृथ्वीराज रासो का निर्माणकाल, कोषोत्सव स्मारक ग्रंथ, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

(ख) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १०।

२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ १७०–१७२।

३. श्री मद्भागवत् स्कन्ध १०, अध्याय ३३, श्लोक १०।

'पृथ्वीराज रासो' के आंशिक रूप में गेय होने का एक अन्य प्रमाण भी हमें उपलब्ध हुआ है। सुप्रसिद्ध संगीत-ग्रन्थ राग-कल्पद्रुम के द्वितीय संस्करण[1] के सम्पादक श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने रागकल्पद्रुम के निर्माता स्वर्गीय कृष्णानन्द व्यास "रागसागर" का परिचय देते हुए लिखा है :—

"............इस समय एक मात्र यही कवि चन्द का वह रायसा उपयुक्त रूप से गा सकते हैं। हमने बहुत डरते-डरते गुरु स्थानीय वसु महाशय से वही गान सुनने का आग्रह प्रकाश किया और राग-सागर ने भी हँसते-हँसते बालक का मन रख दिया। उन्होंने कवि चन्द का गान सुनाने के लिये पहले अपना परिधृत परिच्छद समस्त खोल-खाल लंगोटा पहना। पीछे वीर रसात्मक कवि चन्द का एक पद गाया। वैसा हृदय उत्तेजक और वीर रसात्मक गान फिर हमें कभी सुन न पड़ा। जो लोग आनन्दकृष्ण वसु महाशय के पुस्तकागार में उस समय बैठे थे वे रागसागर महाशय का अपूर्व स्वरालाप सुन और हाव-भाव देख मानो मन्त्रमुग्ध हो गये।[2]"

श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने श्री कृष्णानन्दव्यास का जन्म सन् १७९४ ई० बताया है और इन्हें मेवाड़ के "जोहैनी" स्थान का निवासी लिखा है। श्री व्यास उदयपुर महाराणा के संगीताचार्य थे और उदयपुर महाराणा ने ही इन्हें 'राग-सागर' का सम्मान प्रदान किया था।[3]

पृथ्वीराज रासो का निर्माण पृथ्वीराज चौहान की वीरता एवं अद्भुत् चरित्र से प्रेरित होकर पृथ्वीराज के मृत्युकाल अर्थात् विक्रमी संवत् १२५० के लगभग ही सम्भवतः प्रारम्भ हुआ। विभिन्न कवियों द्वारा कालान्तर में पृथ्वीराज रासो का विकास होता रहा और रासो के मूलतः गेय होने से इसकी गान-परम्परा मौखिक रूप में चलती रही। वि० सं० १६६७ से पहले की इसकी कोई लिखित प्रति नहीं प्राप्त होती। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह द्वितीय (शासनकाल वि. स. १७५५–१७६६) ने पृथ्वीराज रासो के बिखरे हुए रूपों को एकत्रित करवाया जिसको वृहत् रूपान्तर की संज्ञा दी गई है।

---

१. प्रकाशक वंगीय साहित्य परिषद्, २४३/१ अपर सरकूलर रोड़, कलकत्ता, प्रकाशनकाल सं० १९७१।

–, रागकल्पद्रुम का द्वितीय संस्करण, प्रथम संस्करण संवत् १९०० (सन् १८४३ ई०) में स्वयं श्री कृष्णानन्द व्यास ने प्रकाशित किया था।

२. रागकल्पद्रुम, द्वितीय संस्करण (सं० १९७१) में प्रकाशित वक्तव्य।

३. वही।

पृथ्वीराज रासो हमारे साहित्य-भंडार का एक अनुपम और अनमोल जगमगाता रत्न है। इसमें मूल कथा के साथ अनेक उपकथाओं, रसों, छंदों और अलंकारादि काव्यांगों का सफलतापूर्वक समावेश हुआ है। अवश्य ही रासो में अनेक क्षेपक हैं किन्तु उनका भी काव्य की दृष्टि से महत्व है। क्षेपक के आक्षेप से हमारे वाल्मिकीय रामायण, महाभारत और रामचरित मानस आदि भी वंचित नहीं हैं तो फिर क्षेपकों के कारण पृथ्वीराज रासो को साहित्यिक दृष्टि से महत्वहीन नहीं कहा जा सकता।

पृथ्वीराज रासो की प्राप्त समस्त प्रतियों के आधार पर इस महाकाव्य के पूर्ण पाठ को वैज्ञानिक वृहत्तम संस्करण के रूप में सम्पादित करते हुए इसका अध्ययन और मूल्याङ्कन करना सर्वथा उचित होगा।

—:०:—

: २ :

'वेलि कृष्ण-रुक्मिणी री'

राठौड़ पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री" राजस्थानी साहित्य की उत्कृष्टतम काव्य-कृति मानी गई है। यह वेलि भक्तजनों के लिये "मुगती तणी नीसरणी"[1], सरस्वती की कंठश्री[2] और रसिकों हेतु रसमय[3] है। वेलि की लगभग एक सौ प्रतियां विभिन्न हस्तलिखित ग्रन्थ-भण्डारों में उपलब्ध हो चुकी हैं[4], अनेक संस्कृत, ब्रज, राजस्थानी और खड़ी बोली की टीकाएं हो चुकी हैं[5] तथा छः विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।[6]

---

१. वेलि, छन्द सं० २९४।

२. वेलि, छन्द सं० २७९।

३. वेलि, छन्द सं० २९८।

४. राजस्थान भारती, बीकानेर पृथ्वीराज विशेषांक भाग ७, अंक १—२ और राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ग्रन्थ सूचियां।

५. राजस्थान भारती, बीकानेर, मई १९६१।

६. (१) सं. डॉ. एल. पी. तेस्सीतोरी, एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता १९१९ ई०।
   (२) सं. ठाकुर रामसिंहजी और सूर्यकरणजी पारीक, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, १९३१ ई०।
   (३) सं. डॉ. आनन्द प्रकाशजी दीक्षित, विश्वविद्यालय-प्रकाशन, गोरखपुर, १९५३ ई०।
   (४) सं. डॉ. नरोत्तमदासजी स्वामी, श्री राममेहरा एण्ड कं., आगरा १९५३ ई.।
   (५) सं. श्री कृष्णशंकर शुक्ल, साहित्य-निकेतन, कानपुर १९५४ ई०।
   (६) सं. श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई, फार्बस, गुजराती सभा, बम्बई, गुजराती टीका, सहित १९५५ ई०।

'क' कथा-समीक्षा

महाराजा पृथ्वीराज राठौड़ ने अपनी 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के प्रारंभ में मंगलाचरण के अन्तर्गत परमेश्वर, सरस्वती, सद्गुरु और मंगलरूप माधव का स्मरण किया है।[१] कवि ने तदुपरांत अपने असामर्थ्य और कथा की महत्ता का कलात्मक निरूपण करते हुए लिखा है कि वह गुणहीन होते हुए गुणनिधि का गान करना चाहता है मानों काष्ठचित्रित पुतली अपने हाथ से चित्रकार का चित्रण करना चाहती है, अथवा किसी वाग्विहीन व्यक्ति ने वागेश्वरी सरस्वती को विजित करने के लिए विवाद प्रारम्भ किया है। कवि अपने मन को कहता है कि मूर्ख! सरस्वती भी जिसको नहीं देख पाती उसको तू देखना चाहता है, तू वातरोग से पीड़ित है अथवा पागल हो गया है। पंगु चलकर पहाड़ पर कैसे पहुँच सकता है[२] आगे कवि शेषनाग और अपनी तुलना करता हुआ कहता है कि शेषनाग ने भी परमेश्वर के चरित्र का पार नही पाया तो उस जैसे मेंढ़क के वचनों का क्या वस हो सकता है—

"जिणि सेस सहस फण, फणि फणि बि बि जीह,
जीह जीह नवनवौ जस।
तिणि ही पार न पायौ त्रीकम,
वयण डेडरां किसौ वस॥"[३]

कवि ने काव्य में निहित शृंगार की ओर संकेत भी प्रारम्भ में ही कर दिया है :—

"त्रीवरणण पहिलौ कीजै तिणि, गूंथियै जेणि सिंगार ग्रंथ॥"[४]

कवि ने काव्यगत् शृंगार की ओर संकेत करते हुए उसकी मर्यादा का भी अनूठे रूप में चित्रण कर मातृत्व की महत्ता बताई है। महाकवि तुलसी ने जनक-नन्दिनी सीता का शृंगार और सौन्दर्य का वर्णन मातृरूप में किया है उसी प्रकार महाराजा पृथ्वीराज ने रुक्मणी के मातृत्व की ओर संकेत किया है :—

"पूत हेत पेखतां पिता प्रति, वली विसेखे मात वड़ी।"[५]

---

१. छंद संख्या, १।
२. छंद संख्या, २-४।
३. छंद संख्या, ५।
४. छंद संख्या, ८।
५. छंद संख्या ९।

कवि ने विदर्भपति राजा भीष्मक और उसकी संतानों का संक्षिप्त वर्णन[1] करते हुए रुक्मिणी के बालरूप और सौन्दर्य का और वय:संधि का रमणीय, कल्पनारंजित और कलापूर्ण चित्रण किया है।[2]

रुक्मिणी बालहंस के समान राजा के आंगन में क्रीड़ाएं करती है, बत्तीस लक्षणों से युक्त है, गुड़िया खेलती है और समान शील, कुल और अवस्था की सखियों में इस प्रकार शोभित होती है मानों तारात्रों में चन्द्र हो। उसकी बाल्यावस्था व्यतीत हो चुकी है और युवावस्था प्रारम्भ हो रही है। अपने अंगों को छिपाने में वह लज्जा करती हुई भी लज्जित हो रही है। कवि ने लिखा है :—

आगलि पित मात रमन्ती अंगणि, काम विराम छिपाडण काज।
लाजवती अंगि एह लाज विधि, लाज करन्ती आवे लाज ॥[3]

आगे कवि ने लिखा है कि रुक्मिणी का शैशवरूपी शिशिर व्यतीत हो गया है और युवावस्थारूपी ऋतुराज का अपने परिग्रह सहित आगमन हो गया है। इस प्रसंग में कवि ने सांगरूपक के अन्तर्गत रुक्मिणी की युवावस्था का सरस चित्रण किया है। कवि का शिख-नख वर्णन अनूठा है।[4]

रुक्मिणी ने पूर्ण शिक्षा प्राप्त की जिसके विषय में कवि ने लिखा है :—

"व्याकरण पुराण समृति सासित्र विधि, वेद च्यारि खट अंग विचार।
जाणि चतुरदश चौसठि जाणी, अनन्त अनन्त तसु मथि अधिकार ॥[5]

रुक्मिणी में गुणश्रवण के द्वारा श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है और वह श्रीकृष्ण को वर रूप में प्राप्त करने की इच्छा से गोरी और हर की वन्दना करती है।

राजा भीष्मक रुक्मिणी का विवाह कृष्ण से करना चाहते हैं।[6] किन्तु उनका पुत्र रुक्मैया श्रीकृष्ण का विरोध करता हुआ शिशुपाल को विवाह हेतु निमन्त्रण भेजता है।[7] रुक्मैया कृष्ण को अहीर एवं ग्वाला कहता हुआ राजपरिवार में कृष्ण का विवाह-सम्बन्धकरना उचित नहीं मानता है।

शिशुपाल लग्नपत्रिका प्राप्त कर अनेक राजाओं के साथ बरात सज्जित कर प्रसन्नतापूर्वक कुन्दनपुर आता है। कवि ने इस अवसर पर कुन्दनपुर की शोभा का विशेष वर्णन किया है—

---

१. छंद संख्या १०, ११।
२. छंद संख्या १२, २८।
३. छंद संख्या १८।
४. छंद संख्या २०, २७।
५. छंद संख्या २८।
६. छंद संख्या ३०।
७. छंद संख्या ३१, ३६।

जोइ जलद पटल दल सांवल ऊजल, घुरै नीसाण सोइ घणघोर।
प्रोलि प्रोलि तोरण परठीजै, मण्डै किरि तण्डव गिरि मोर।।
राजान जान संगि हुंता जु राजा, कहे सु दीघ ललाटि कर।
दूरा नयर कि कोरण दीसै, धवलगिरि कि ना धवलहर।।[1]

कवि ने शिशुपाल के कुन्दनपुर में आने पर रुक्मिणी की विकल दशा का चित्रण करते हुए श्री कृष्ण के पास ब्राह्मण के द्वारा रुक्मिणी का संदेश भिजवा दिया है। ब्राह्मण मार्ग में रात होने पर सो जाता है और प्रातः जागने पर अपने आपको द्वारिका में पाता है। कवि ने द्वारिका का मनोरम वर्णन किया है :—

जोवै जां गृहि गृहि जगन जागवै,
जगनि जगनि कीजै तप जाप।
मारगि मारगि अम्व मौरिया,
अम्बि अम्बि कोकिल आलाप।।[2]

संदेशवाहक ब्राह्मण कृष्ण के पास पहुंचता है, कृष्ण उसका विधिपूर्वक स्वागत-सत्कार करते हैं और फिर ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

श्रीकृष्ण को लिखा गया रुक्मिणी का पत्र काव्य का एक महत्वपूर्ण अंश है। रुक्मिणी लिखती है—"हे बलि को बांधने वाले कृष्ण! मेरे साथ आपके सिवाय कोई दूसरा विवाह करेगा तो मानो सिंह की बलि का भोग गीदड़ करेगा, कपिला गाय क्रूर कसाई के हाथों में दी जावेगी और पवित्र तुलसी चाण्डाल को दी जावेगी।[3] मेरे लिये किसी अन्य वर का होना हवन में उच्छिष्ट वस्तु डालना, शूद्र के यहां शालिग्राम की मूर्ति स्थापित करना और म्लेच्छ के द्वारा वेदमंत्र-उच्चारण के समान होगा।"[4]

कवि ने श्रीकृष्ण को परमब्रह्म मानते हुए अनेक अवतारों का वर्णन किया है। श्रीकृष्ण को मूलतः विष्णु और रुक्मिणी को लक्ष्मी मानते हुए पाताल से पृथ्वी के, समुद्र से लक्ष्मी के और लंका से सीता के उद्धार की स्मृति श्रीकृष्ण को कराई है। रुक्मिणी ने विष्णु-रूप में कृष्ण की वन्दना करते हुए अपने उद्धार की प्रार्थना की और नगर के निकट अम्बिकालय में पहुंचने का संकेत किया।

---

१. छंद संख्या ४०, ४१।
२. छंद संख्या ५२, ५६।
३. छंद संख्या ५६।
४. छंद संख्या ६०।

रुक्मिणी ने शृंगार प्रारंभ किया। कवि ने रुक्मिणी के स्नान और नख-शिख-सौन्दर्य का पूर्ण हार्दिकता के साथ निरूपण किया है।

श्रीकृष्ण ने अन्तरिक्ष मार्ग से अम्बिकालय की ओर रुक्मिणी का अनुगमन किया। सैनिकों ने मन्दिर के चारों ओर सुरक्षा के लिये घेरा डाल दिया। रुक्मिणी ने मन्दिर में प्रवेशकर अपने हाथों देवी का पूजन कर मनवांछित फल अपने हाथ में कर लिया। देवी-पूजन के उपरान्त रुक्मिणी ने जैसे ही संरक्षिका सेना पर दृष्टि फेरी वैसे ही सेना मूर्छित हो गयी। कवि ने इस विषय में लिखा है—

आकरपण वसीकरण उनमादक
परठि द्रविण सोखण सर पंच।
हसणि लसणि गति संकुचणि
सुन्दरि द्वारि देहरा संच॥
मन पंगु थियौ सहु सेन मूरछित
तह नह रही संपेखतै।
किरि नीपायौ तदि निकुटी ए
भठ पूतली पाखाणमै॥[1]

रुक्मिणी ने हृदय को आकर्षित करने वाली चितवन मोहित एवं वशीकृत करने वाली मुस्कान, उन्माद उत्पन्न करने वाली अंगभंगिमा, हृदय को द्रवित करने वाली गति और चेतना हर लेने वाले संकोच रूपी शोषण के साथ लौटते समय मंदिर के द्वार में प्रवेश किया। कवि ने उक्त वर्णन में कामदेव शक्ति का पांच बाणों के रूप में निरूपण किया है। कामदेव के पांच बाण निम्नलिखित हैं :—

(क) समोहनोन्मादौ च शोषणस्तापनस्तथा।
स्तंभनश्चेति कामस्य पंच बाणाः प्रकीर्तिताः॥

(ख) अरविन्दमशोकं च चूतं च नव मल्लिका।
नीलोत्पलं च पंचौते पंचबाणस्य शायकाः॥

कवि ने सम्मोहन के स्थान पर वशीकरण, तापन के स्थान पर द्रविण और स्तम्भन के स्थान पर आकर्षण का विशेष प्रयोग किया है—

कृष्ण ने आकाशमार्ग से मन्दिर के समीप प्रवेश कर रुक्मिणी का हाथ पकड़ कर उसको अपने रथ में बैठा लिया।[2] कवि ने आगे वीरों द्वारा युद्ध के लिये

---

१. छंद संख्या १०९, ११०।
२. छंद संख्या १११, ११२।

तैयार होने का और युद्ध का वर्णन किया है। युद्ध वर्णन के अन्तर्गत कवि ने सांग रूपक के अन्तर्गत वर्णात्मक का सफल प्रयोग किया है। कवि स्वयं कुशल सैनिक एवं सेनापति था अतएव मुगलकालीन युद्ध-पद्धति की स्पष्ट झलक इस वर्णन में उपलब्ध होती है। वेली का यह युद्ध वर्णन अपने आप में पूर्ण है एवं युद्धोपरान्त होने वाली वीभत्स स्थिति का भी निरूपण हुआ है। काव्यकला की दृष्टि से युद्ध वर्णन का अंश "वेली" का एक प्रमुख भाग है।[1] कवि ने आगे रुक्मी को निरायुध कर रुक्मिणी की हृदयगत इच्छा समझते हुए उसके केश उतार कर मुक्त कर दिया। बलराम ने कृष्ण को इस विषय में व्यंगमय वचन कहे तो कृष्ण ने अपना हाथ रुक्मैया के सिर पर फेर कर केश पुनः लगा दिए।[2]

आगे कवि ने द्वारिका के मार्ग में श्रीकृष्ण को मिलने वाली विजय की बधाई देने वालों का वर्णन भी किया है।[3] ...विजयी श्रीकृष्ण के रुक्मिणी सहित द्वारिका में प्रवेश करने पर द्वारिका-वासियों के आनन्दोत्साह, द्वारिका की सजावट और उत्सव का वर्णन कवि ने रुचिपूर्वक किया है।[4] द्वारिका नगर श्रीकृष्ण के स्वागत में इस प्रकार लहरें लेने लगा जैसे पूर्णिमा के दिन चन्द्रदर्शन से ज्वारयुक्त समुद्र लहरें लेता है।

ज्योतिषियों से विवाह का मुहूर्त पूछा गया तो उन्होंने कम्पित चित्त से कहा, एक ही स्त्री के साथ पुनः पुनः पाणिग्रहण कैसे हो सकता है? यह निश्चय हुआ कि रुक्मिणी हरण के साथ ही पाणिग्रहण हो गया, शेष संस्कार ही आगे होने उचित हैं।[5]

कवि ने आगे विवाह-संस्कार वर्णन[6] करते हुए श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के शयन-गृह प्रसंग का चित्रण किया है।[7] श्रीकृष्ण-रुक्मिणी की मिलन-रात्रि के पूर्व संध्या का और कृष्ण-रुक्मिणी की मिलन-सम्बन्धी आतुरता का कवि ने विशेष वर्णन किया है।[8]—

अलि पंति बन्धे चक्रवाक असन्धे,
निसि सन्धे दृगि अहोनिसि।
कामिणी कामि तणी कामागनि,
मन लायां दीपकों मिसि॥

---

१. छंद संख्या ११३, १३३। २. छंद संख्या १३४, १३७।
३. छंद संख्या १३८। ४. छंद संख्या १३९, १४८।
५. छंद संख्या १४९, १५२। ६. छंद संख्या १५३, १५७।
७. छंद संख्या १५८, १६१। ८. छंद संख्या १६२, १६५।

ऊभी सहु सखिए प्रसंसिता अति,
क्रितरथी स्री मिलण कृत।
अटल सेज द्वार विचि आहुटि,
स्रुति दे हरि धरि समाश्रित ॥[1]

कृष्ण-रुक्मिणी की रति-क्रीड़ा का वर्णन मर्यादित हुआ है।[2] सुरतांत वर्णन भी कवि ने किया है।[3] कवि ने आगे प्रभात वर्णन में लिखा है :—

संयोगिण चीर रई कैरव श्री,
घर हट ताल भमर गोधोख।
दिणयर ऊगि एतला दीधा,
मोखियां बंध बंधियां मोख ॥
वाणिजां वधू गो वाछ असई विट,
चोर चकव विप्र तीरथ वेल।
सूर प्रगटि एतला समपियां,
मिळियां विरह विरहियां मेल ॥[4]

वेलि में षट्ऋतु वर्णन भी कवि ने मनोयोग पूर्वक किया है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद् शिशिर और बसन्त का वर्णन क्रमशः किया गया है। बसन्त वर्णन विस्तार से हुआ है।[5] आगे कवि ने प्रद्युम्न जन्म का वर्णन किया है।[6] तदुपरांत कवि ने वेलि का माहात्म्य वर्णन किया है।[7] कवि ने श्री मद्भागवत को वेलि का मूलस्रोत बताया है :—

वल्ली तसु बीज भागवत वायौ,
महि थाणौ प्रिथु दास मुख।
मूल ताल जड़ अरथ मण्डहे,
सुथिर करणि चढ़ि छांह सुख ॥
पत्र अंक्सर दल द्वाला जस परिमल,
नव रस तन्तु विधि अहोनिसि।
मधुकर रसिक सु भगति मंजरी,
मुगति फूल फल भुगति मिसि ॥[7]

---

१. छंद संख्या १६४, १६५।
२. छंद संख्या १७३।
३. छंद संख्या १७४, १८१।
४. छंद संख्या १८५, १८६।
५. छंद संख्या २२६, २६८।
६. छंद संख्या २६६, २७६।
७. छंद संख्या २७७, ३०४

दार[1] डॉ. रामकुमार वर्मा[2] और डॉ. ओझा[3] आदि ने "अचल" का अर्थ ७ मान कर वेलि का र. का. वि. सं. १६३७ लिखा है । इसके विपरीत कुशलधीर[4] और जयकीर्ति[5] ने अचल का अर्थ (८) करते हुए वेलि का र. का. वि. सं. १६३८ माना है।

वेलि की कतिपय प्रतियों में रचना काल सूचक निम्नलिखित पद्य उपलब्ध होता है जिसमें स्पष्ट ही वि. सं. १६३८ सूचित किया गया है—

(८) (३) (६) (१)
वसु सिव-नयन रस ससि वच्छरि, विजय-दसमी रवि
रिख वरण उत ।
क्रिसन-रुकमणि वेलिकलप-तरु की कमधज कलियाण-उत ।*१

अनेक प्रतियों में वेलि का रचनाकाल वि. सं. १६३६ भी सूचित किया गया है—

सौलेसे संवत छत्रीसा वरखे, सोमतीज वैसाख समंधि ।
रुकमणि कृष्ण रहस रंग रमता कही वेलि पृथीराज कमांधि ।।*२

पं० नरोत्तमदास जी स्वामी के मतानुसार उक्त पद्य क्षेपक है क्योंकि यह ग्रंथ-समाप्ति और प्रशस्ति लेख के बाद जोड़ा गया है।*३ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर-शाखा के अन्तर्गत सरस्वती-भण्डार पुस्तकालय में सुरक्षित वेलि की प्रतियों में रचनाकाल वि. सं. १६४४ लिखित है।—

१. सोलह सै संवत चमालै वरसे, सोम तीज वेसाख सुदी (प्रति. सं. १७०१)

---

१. गुजराती सा. ना. स्वरूपो, मध्यकाल पृ. ३७५ ।

२. हि. सा. आलोचनात्मक इतिहास, द्वितीय संस्करण पृ. २५७ ।

३. बीकानेर राज्य का इतिहास भाग १, पृ. १६१ ।

४. महिमा भक्ति जैन भण्डार, बीकानेर ह. पृ. सं. ३३/४६० ।

५. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति सं. ३६४३ ।

*१. (क) राज प्राच्य विद्या प्रति–जोधपुर की प्रतियां ग्रंथांक १८३५, ३५५७/२ ३५४८, ४०७६, ४०७७, ४०७८, ४८३८, ८२५३, ६१४४, ६२५२, ११०६० ।

(ख) आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान-भण्डार, लाल भवन, जयपुर की प्रति क्रमांक २२२२ ।

*२. (क) बहाउपाश्रय बीकानेर क्रमांक ३५/५७७ ।

(ख) अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर क्र. ७४०५ ।

*३. वेलि की सम्पादकीय प्रस्तावना, पृ. ७७ ।

२. सोलह सै संवत चमालै वरपै, सोम तीज वैसाख समधि (प्र. सं. १७२८)

३. सौलै सै संवत चौमालीसै वरसै, सोमतीज वैसाख सुदि (प्रति. सं. १७६५)

उक्त लेखों के आधार पर डॉ. आनन्द प्रकाशजी दीक्षित[1] और डॉ. हीरालाल जी माहेश्वरी[2] ने वेलि का र. का. वि. सं. १६४४ माना है। पं. मोतीलाल जी मेनारिया का यह अनुमान निराधार प्रतीत होता है कि वि. सं. १६३७ वेलि का आरंभ संवत है और वि. सं. १६४४ वेलि को पूर्ण करने का संवत है।[3]

वास्तव में गागरौनगढ़ वाली वि. सं. १६६९ में लिखित उक्त प्राचीनतम प्रति में रचना काल सम्बन्धी पद्य उपलब्ध नहीं होता, इसलिये बिना किसी प्रमाण से समर्कित हुए वि. सं. १६३६, १६३७, १६३८ और १६४४ में से किसी एक संवत के समर्थन में मत प्रकट करना उपयुक्त नहीं प्रतीत होता। इस विषय में अभी निश्चित-रूपेण यही कह सकते हैं कि वेलि की रचना १७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई है।

'ग' रसव्यंजना

वेलि का उपरनाम "रुक्मिणि–मंगल" है—

१. मन सुद्धि जपन्तां रुषमिणी मंगल, विधि सम्पति थाई कुसल नित।[4]

२. सुख कहि क्रसन रुषमणी मंगल, काँई रे मन कलपसि कृपण।[5]

वेलि के उक्त नाम से स्पष्ट होता है कि यह मंगल-काव्य परम्परा में लिखित एक भक्तिपरक रचना है। प्रस्तुत वेलि को "अमृत-वल्ली"[6] और "गुण वेलि"[7] भी लिखा गया है साथ ही प्रस्तुत वेलि का कहीं "क्रिसन-रुक्मणी री वेलि"[8] और कहीं

---

१. वेलि, सम्पादकीय भूमिका, पृ. ५१।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. १६१।

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. १२४।

४. छंद संख्या २८६।

५. छंद संख्या २८६।

६. "इति श्री रावराज पृथ्वीराजकृत अमृत वल्ली समाप्त" मुनि श्री कान्तिसागर जी की प्रति।

७. "पृथ्वीराज कृत गुण वेलि लिख्यते" मुनिश्री कान्तिसागरजी की संवत १७८५ की प्रति।

८. सं. नरोत्तमदास स्वामी, श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा।

"वेलि क्रिसन रुक्मणी री"[१] आदि नाम भी लिखे गये हैं—वेलि की प्रबन्ध ध्वनि भक्ति है किंतु इसमें शृंगार, वीर, वीभत्स, रौद्र, भयानक, अदभुत् वात्सल्य, मध्यमकालीन राजस्थानी काव्य में भक्ति, वीरता और शृंगार का त्रिवेणी-संगम विशेष रूप में दृष्टिगत होता है। वेलि में व्यंजित संयोग-शृंगार को देखते हुए ही डॉ. रामकुमार वर्मा ने लिखा है, "पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने में तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निर्वेदपूर्ण आदर्श को रखने में वे असमर्थ थे"[२]। श्रीकृष्ण शंकर शुक्ल ने वेलि में अक्षरश: संभोग शृंगार माना है।[3] कवि ने "रंथियौ जेणि सिगार ग्रन्थ"[४] लिखकर वेलि में शृंगार रस का निरूपण किया है। वेलि में वियोग शृंगार की अनेक अवस्थाओं का चित्रण संयोग पक्ष की पूर्व-पीठिका के रूप में हुआ है यथा—अभिलासा[५] चिंता[६] गुण कथन[७] और संस्मरण[८]। दूत सखी षटऋतु वर्णन, सन्ध्या, रात्रि आदि का चित्रण कवि ने उद्दीपन के रूप में किया है नायक-नायिका की संयोग-शृंगारगत आतुरता[९] उत्सुकता[१०] लज्जा[११] आदि का चित्रण भी कवि ने मनोयोग पूर्वक किया है। वेलि विवाह-मंगल-संज्ञक रचना है। अतएव इसमें विवाह वर्णन के उपरान्त नायक-नायिका मिलन, सुरतान्त वर्णन और पुत्र जन्म सम्बन्धी भी है। शृंगारगत उक्त वर्णन होते हुए भी प्रबन्ध में भक्ति का वातावरण पूर्णरूपेण बना रहा है। जिसमें कवि की भक्ति-भावना और उच्च कोटि की काव्य शक्ति का परिचय मिलता है।

वेलि में भक्ति का चित्रण, मंगलाचरण[१२] श्रीकृष्ण-चरित्र का महत्व[१3] कवि का आत्म-निवेदन[१४] और वेलि के महात्म्य कथन[१५] आदि में किया गया है। वेलि का आधार श्री मद्भागवत्[१६] को मानते हुए कवि ने कृष्ण को मंगलरूप[१७]

---

१. सं. डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर।
२. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास द्वितीय संस्करण पृ. २५७।
३. स्वसंपादित वेलि, प्रकाशन साहित्य निकेतन कानपुर, भूमिका पृष्ठ ३५।
४. पद्य संख्या ८।
५. पद्य संख्या २९।
६. पद्य संख्या ७०।
७. पद्य संख्या ५९।
८. पद्य संख्या ६३।
९. पद्य सं. ७०, १६५।
१०. पद्य संख्या ४३, १७०।
११. पद्य संख्या १८ १६७।
१२. पद्य संख्या १।
१३. पद्य संख्या २, ७।
१४. पद्य संख्या २, ६।
१५. पद्य संख्या २७७, २९४।
१६. पद्य संख्या २९१, २९२।
१७. पद्य संख्या १।

कमलापति[1] भीकम[2] श्रीपति[3] जगतपति[4] अन्तरर्यामी[5] हरि[6] पुरुपोतम[7] त्रिभुवनपति[8] आदि तथा रुक्मिणी को रामा-अवतार[9] और श्री आदि लिखा है। रुक्मिणी ने अपने पत्र में राम-सीता, विष्णु-लक्ष्मी और आत्मा-परमात्मा के सम्बन्ध बताया है।[10] द्वारिका का वर्णन अमरावती के रूप में है। वेलि को मंगल-काव्य[11] लिखते हुए इसकी पाठ-विधि का वर्णन है।[12] वेलि का माहात्म्य एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में वर्णित है।[13]

वेलि में वीर रस का निरूपण भी यथोचित रूप में हुआ है। प्राचीनकाल में विवाह शक्ति-प्रदर्शन के अवसर होते थे और वीर पुरुष को ही सुयोग सुन्दरी से विवाह करने का अधिकार होता था। कवि ने सफलतापूर्वक युद्ध के हेतुओं की सृष्टि की है और युद्ध का सांगोपांग वर्णन, युद्ध-वर्षा-रूपक के अन्तर्गत किया है। युद्ध में होने वाली मारकाट, अंग-भंग और रक्त प्रवाह के दृश्य वीरों के लिये आनन्ददायक होते हैं। युद्ध में प्राप्त होने वाली मृत्यु तो महान मंगलकारिणी मानी गई है। इसलिये श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा उपस्थित रस-विरोध[14] की स्थिति नहीं मानी जा सकती। वेलि में युद्धगत ललकार[15] शस्त्र संचालन[16] और सैन्य संगठन[17] आदि का चित्रण वीररस के सर्वथा अनुरूप हुआ है। वेलि के अनेक स्थलों में हास्य की सृष्टि भी हुई है।[18]

'घ' भाषा-शैली

वेलिकार का भाषा और शब्दों पर विशेष अधिकार है जिसके बल पर उसने काव्य के भाव-पक्ष और कला-पक्ष में सफल संतुलन रखते हुए अपरिचित काव्य सौन्दर्य की सृष्टि की है। कवि ने संस्कृत के तत्सम, तद्भव शब्द रूपों का राजस्थानी भाषा की मर्यादा के अनुसार प्रयोग किया है। अनेक प्रसंगों में लोकोक्तियां

---

१. पद्य संख्या ३।
२. पद्य संख्या ५।
३. पद्य संख्या ६।
४. पद्य संख्या ५४।
५. पद्य संख्या ५४, ६४।
६. पद्य संख्या ६१।
७. पद्य संख्या ६६।
८. पद्य संख्या ६८।
९. पद्य संख्या १२।
१०. पद्य संख्या ५९, ६६।
११. पद्य संख्या २८६।
१२. पद्य संख्या २८०।
१३. पद्य संख्या २७८, २९४।
१४. वेलि हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग, संपादकीय भूमिका पृष्ठ ७६, ८७।
१५. पद्य संख्या ११२, ११४।
१६. पद्य संख्या ११८, ११९।
१७. पद्य संख्या ११४, ११७।
१८. पद्य संख्या ११३, १३५।

और मुहावरों का भी प्रयोग किया है[१]। कवि ने रुक्म को सोनानामी[२] मकर राशि के लिये काम वाहन[३] आदि लिखकर "कूट शैली" भी अपनाई है। कवि ने प्रसंग के अनुसार शृंगार-वर्णन में कोमल-कांत पदावली और वीरता-वर्णन में ओजमयी शब्दावली का प्रयोग किया है। शिलह हवाई, जोर, घरकोब, रुख जैसे अरबी फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इनसे भाषा की मर्यादा कहीं भंग नहीं हुई है।

'ड.' वस्तु वर्णन

कवि की वस्तु वर्णन में विशेष रुचि है। हरिमहिमा वर्णन[४] नगर वर्णन के अन्तर्गत कुन्दनपुर-वर्णन[५] और द्वारिका वर्णन[६] नायिका का नख-शिख और सौन्दर्य वर्णन[७] युद्ध वर्णन[८] और प्रकृति वर्णन के अन्तर्गत सन्ध्या वर्णन[९] प्रभात[१०] ग्रीष्म[११] वर्षा[१२] शरद[१३] शिशिर[१४] हेमन्त[१५] और बसन्त[१६] में कवि ने अपने विशद् सांसारिक अनुभव, शास्त्रीय ज्ञान और भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। वेलिगत प्रसंगों से कवि के ज्योतिष और शकुन[१७] वैद्यक[१८] संगीत-नृत्य और नाटक शास्त्र[१९] योगशास्त्र[२०] पुराण[२१] कोष[२२] राजनीति[२३] कर्मकाण्ड[२४] भाषा[२५] कृषि[२६]

---

१. पद्य संख्या ३, ५, ४५, २२६, १३०, १६८।

२. पद्य संख्या १३४।

३. पद्य संख्या २२२।

४. पद्य संख्या १, ७।

५. पद्य संख्या ३८, ४०।

६. पद्य संख्या ४८, ५१।

७. पद्य संख्या १२, २७, ८१, १०२।

८. पद्य संख्या ११३, १३३।

९. पद्य संख्या १६२, १६४।

१०. पद्य संख्या १८२, १८६।

११. पद्य संख्या १८७, १९३।

१२. पद्य संख्या १९४, २०५।

१३. पद्य संख्या २०६, २१५।

१४. पद्य संख्या २२६, २२७।

१५. पद्य संख्या २२८।

१६. पद्य संख्या २२९, २६८।

१७. छंद ७०, ९३, ९६, १८८, १९३, २१२, २२२, २२६, २८६।

१८. छंद, २८४, २८५।

१९. छंद २४६, २४८।

२०. छंद १५, १८०, १८४, २०८।

२१. छंद ८४, ९८ १०६, २१६, २९९।

२२. छंद २७३, २७४, २७५, २७६।

२३. छंद २४९ २५५।

२४. छंद २८०।

२५. छंद २९७।

२६. छंद १२३, १२८।

बुनाई[1] लुहारी[2] सुनारी[3] सिकलीगरी[4] सामाजिक रीतियां[5] आभूषण[6] एवं व्यापार[7] रंग[8] आदि के ज्ञान का भी परिचय मिलता है। काव्यगत वर्णन कथा-प्रवाह में कहीं बाधक नहीं है और इनसे काव्यगत सौन्दर्य की सफलता सृष्टि हुई है।

च' अलंकार सौन्दर्य

वेलि का प्रत्येक पद सम्पूर्ण रूप में अलंकृत है। कवि के अलंकार-निरूपण में सर्वत्र स्वाभाविकता है और अलंकारों का प्राचुर्य होते हुए भी प्रत्येक पद में भाव-पक्ष को कहीं हानि नहीं हुई है। अलंकारों के कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

"अनुप्रास"

(१) तेज कि रतन कि तार कि तारा, हरि हंस-सावक रस-हर हीर[9]।

(२) वहु बिलखी बीछड़तई बाल, बाल संघाती बालपण।[10]

(३) कामणि—कुच कठिण कपोल करी किरि वेस नवी विधि वाणि खाणि।[11]

"यमक"

(१) सिखर सिखर-मई मंदिर सिर।[12]

(२) हरि गुण मणि ऊपनी जिका हरि।[13]

(३) कलस सीस करि करि कमल।[14]

(४) आदर करे जु आदरी।[15]

(५) गुण-मोती मखतूल-गुण।[16]

"श्लेष"

(१) कंत संजोगणि कि सुख कहिया।

विरहणि कहे पलास वण॥[17]

---

१. १७१।
२. छंद १३२।
३. छंद १७५।
४. छंद ८६।
५. छंद १४०, १४२, १५३, १५८, २०६, २१२, २१३, २१४, २२७, २२६, २३८।
६. छंद १६३, १६४, २०६, २१०, २२६।
७. छंद ८१, ६६।
८. छंद १६५, २००, २०३, २५७।
६. छंद संख्या २७।
१०. छंद संख्या १७।
११. छंद संख्या २४।
१२. छंद संख्या २०४।
१३. छंद संख्या २६।
१४. छंद संख्या ४६।
१५. छंद संख्या ३।
१६. छंद संख्या ८१।
१७. छंद संख्या २५६।

(संयोगनी (१) ढ़ाल को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी–(२) कि सुख ! कैसा सुख है। वियोगनी—(१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली (२) पलाश ! मांस को खाने वाला राक्षस है।)

(२) सूरज ही भ्रिख-आसरित ।[1]

(सूरज ने (१) वृष–राशि का आश्रय ले लिया है मानों गर्मी से डरकर (२) वृक्ष का आश्रय ले लिया है।)

वयण सगाई शब्दालंकार का प्रयोग भी सर्वत्र हुआ है । उसके साधारण और असाधारण दोनों ही रूप देखे जा सकते हैं—

साधारण—

(१) कस छूटी छुद्र घंटिका ।[2]
(२) चल-पत्र-पत्र थिउ दुअ देखि चित ।[3]
(३) जाणे सदनि-सदनि संजोयी ।[4]

असाधारण—

(१) तिणि आप ही करायउ आदर ।[5]
(२) लाजवती–अंगि अेह लाज विधि ।[6]
(३) हेक वडउ हित हुपई पुरोहित । [7]

युद्ध-कृषि, बसन्त-यौवन, लोहार-कृष्ण, जुलाहा आदि रूपक के उत्कृष्ट उदाहरण हैं ।

पृथ्वीराज के अलंकार निरूपण के विषय में उल्लेखनीय हैं कि वे अपनी उपमाओं में न केवल उपमेय-उपमान का साधर्म्य कथन करते हैं प्रस्तुत दोनों के आसपास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव अजिव हो कर जगमगाने लगता है। यथा—

संग सखी सील कुलवेस समाणी, पेखि कली पदिमणी परि ।
राजति राजकुंअरि राम अंगण, उडियन वीरज अम्वहरि ॥[8]

---

१. छंद संख्या १८८ । २. छंद संख्या १७८ ।
३. छंद संख्या ७१ । ४. छंद संख्या १०१ ।
५. छंद संख्या १६८ । ६. छंद संख्या १८ ।
७. छंद संख्या ३५ । ८. छंद संख्या १० ।

यहां पर कवि ने रुक्मिणी की उपमा चन्द्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर दी है—बल्कि रुक्मिणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आसपास समूचे वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है।[1]

'छः' छंद प्रयोग

चारण कवियों ने "गीत" नामक छन्द को विशेष अपनाया है। "रघुवर जस प्रकाश"[2] नामक राजस्थानी छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ में गीत के ६४ प्रकारों का लक्षण और उदाहरण सहित वर्णन है जिनमें एक प्रकार "छोटा-साणोर" भी है। छोटा साणोर नामक गीत चारण कवियों को बहुत प्रिय रहा है। छोटा साणोर के चार भेद माने गये हैं —

चार भेद तिण रा चवै, कवियण बढ़ ओकूब।
समझ वेलियो, सोहणो, बूंद जांगड़ो, पूब॥[3]

कवि किसनजी "आढ़ा" ने छोटा साणोर के लक्षण बताते हुए उसके भेद इस प्रकार कहे हैं—

दूहा—कहजै गुरु मोहरा कठै, वण कठैक लघुवंत।
सुज छोटो सांणोर सौ, कवि मत ग्रंथ कहंत॥
भेद चार जिणरा मणी, आद वेलियो अक्ख।
कवी सोहणौ[2] खुड़द[3] कह, वल जांगड़ौ[4] विसक्ख॥[4]

किसनाजी 'आढ़ा' ने वेलिओ गीत का एक भेद "मिस्र वेलिया" भी बताया है -

अथ गीत मिस्र वेलिया लछण।

दूहा—समिल वेलियौ सोहणी, सझ फिर खुड़द समेल।
मिस्र वेलियौ कवि मुणौ, भल जांगड़ो न मेल॥[5]

अरथ—वेलियौ[1]। सोहणौ[2]। खुड़द[3]। तीन ही गीत भेला वणै जिण गीतारो नाम मिस्र वेलियौ कहीजै या मैंलो जांगड़ा री दूहौ वणैं नहीं नै वणैं तो जातविरोध दोस कहीजै। यूं सारी समझ लेणी।

---

१. राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ. १६६, १६७।
२. किसना जी 'आढ़ा' विरचि, स. सीताराम जी लालस प्रका. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर पृ. १६६, ३२४।
३. कवि मंछाराम कृत रघुनाथ रूपक गीतां रो, नागरी प्र.सभा, वाराणसी।
४. रघुवरजस प्रकाश पृ. १६८ छंद संख्या ६४, ६५।
५. रघुवर जस छंद संख्या ६६, पृ. १६८।

अथ गीत मिस्र वेलियौ उदाहरण—

गीत—बूंडतो सखर फील उबारे, गुणतै वेद उचारै गाथ।
घना नाम दे सदना उधारे, नेक जनां तारे रघुनाथ॥
गणका अजामेल सवरीगण, दुख अध ओघ मिटाय दिय।
किता अनाथ सुनाथ कृपाकर, कोसलराज-कुंवर दिया।
सीताहरण भमीरवण रविसुत, लखजटाउ कोसिक मिथलेस।
हेर हेर लज रखी हुलासा, धणियप कर दासा अवधेस॥
रख जन अमै त्रास जमहरण, सुज ऊवरणा जगत सहे।
सूंपी सरम चरंण तौ सरणा, करणानिध किव किसन कहे॥[1]

किसनाजी आढ़ा ने मिस्र वेलियो गीत में वेलिओ सोहणों और सुड़द नामक साणोर के तीन उपभेदों का मिश्रण होना बताया है और जांगड़ो के लिये लिखा है—"भल जांगड़ौ न मैल"। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में जांगड़ा सांणोर का प्रयोग नहीं करते हुए वेलियो, सोहणों और खुड़द साणोर के मिश्रण से बने "मिस्र वेलियो" गीत का प्रयोग किया है। किसनाजी आढ़ा ने वेलिओ, सोहणो और खुड़द के लक्षण इस प्रकार दिये हैं :—

दूहा—मुण धुर तुक अठार मत, बीजी पन रह वेख।
तीजी सोलह चतुरथी, पनरह मता देख॥
सोलह पनरह अन दुहां, गुरु लघु अन्त बखांण।
कहै ऐम सुकवी सकल, जिकौ वेलियौ जाण॥[2]

अरथ—जिण गीत रै पैहली तुक मात्रा १८ होय, दूजी तुक मात्रा १५ होय, तीजी तुक मात्रा १६ होय, चौथी तुक मात्रा १५ होय। दूजा सारां दूहां मात्रा १६/१५/१६/१५ तुक के अन्त आद गुरु अन्त लघु आवैः जिण गीत रौ नाम वेलियो सांणौर कहीजै।

अथ चौथा सूहणां सांणौर का लक्षण :—

दोहौ—धुर तुक मह अठार मतः चवद सोल चवदेण।
सोल चवद लघु गुरु मोहर, जांण सोहणो जेण॥[3]

---

१. रघुवर जस प्रकाश छंद संख्या ६७ पृष्ठ सं २००।

२. रघुवरजस प्रकाश छंद संख्या ६८, ६९ पृष्ठ सं. २००।

३. रघुवरजस प्रकाश छंद सं. ७१ पृ. २०१।

अरथ—धुर कहता पहली तुक मात्रा १८ होवे। दूजी तुक मात्रा १४ चवदै होवै। तीजी तुक मात्रा १६ सोलै होवै। चौथी तुक मात्रा १४ चवदै होवै। पछै दूजा दूहा मात्रा सोलै, १४ चवदै ई० क्रम होवै जींके आद लघु अंत गुरु तुकांत होवे जीं गीतको नाम सोहणो कहे छै।

अथ सातवौ गीत खुड़द छोटो सांणोर लक्षण :—

दूहौ—धुर मत्ता अठार धर, त्रदस सोल त्रदसेण।
दु लघु अंत सांणोर लघु, जप खुड़द किवजेंण॥[1]

अरथ—जींके आद तुक मात्रा अठारै होय। दूजी तुक मात्रा तेरै होय। तीजी तुक मात्रा सोलै होय। चौथी तुक मात्रा तेरै होय। पछलां दूहां पैली सोलै मात्रा। पछै तेरै मात्रा, फेरे सोले, फेर तेरै ईं क्रमसूं होवै। तुकान्त दोय लघु होवै जीं गीत को नाम छोटो सांणोर हंसमग कहीजै।

"वेलि क्रिसन रुकमणी री" में "मिस्र वेलियो" नामक गीत के अन्तर्गत वेलियो सोहणो और खुड़द साणोर नामक उपभेदों का मिश्रण इस प्रकार हुआ है—

(१) वेलियो—(१) जोइ जलद पटल दल सांवल-अजल।
(२) धुरइ निसाण सोइ घण-घोर।
प्रोलि-प्रोलि तोरण परठी जई,
मंडई किरि तंडव गिरि मोर॥[2]

(२) सोहणो—(१) काली करि कांठलि ऊजलि कोरण,
(२) धारे स्त्रावण धरहरिया।
(३) मलि चालिया दसो दिसि जल ग्रम,
(४) थंभिन विरहणि-नइण थिया॥[3]

(३) खुड़द साणोर—(१) जिणि सेस सहस फण, फणि-फणिवि-विजिह,
(२) जीह जीह नव-नवउ जस।
(३) तिणि ही पार न पायउ त्रीकम,
(४) वयंण हेडरां किसउ वस॥[4]

---

१. रघुवरजस प्रकाश छंद सं. ७७ पृ. २०४।
२. पद्य संख्या ४०।
३. पद्य संख्या १६५।
४. पद्य संख्या ५।

वेलि के आलोचकों ने वेलि के छन्दों को "वेलिओ गीत" के आधार पर परीक्षा करते हुए पृथ्वीराज द्वारा नियम भंग होना लिखा है अथवा इसके विषय में मौन धारण किया है। **स्वर्गीय सूर्यकरण जी पारीक** ने स्व० संपादित वेलि की भूमिका में लिखा है "वेलि के सब छन्दों की सूक्ष्म छानबीन करने पर ज्ञात होगा कि कवि ने इस शस्त्र-रीति के जटिल बन्धन को कई स्थानों में भंग किया है।"[1] **डॉ. आनन्द प्रकाश जी दीक्षित** ने "रघुनाथ रूपक गीतां रो" के अनुसार छोटा साणोर का लक्षण बताते हुए लिखा है—"इसके प्रयोग में कवि ने पूरी स्वतन्त्रता बरती है। विषम चरण का नियम पालन, करते हुए भी सम चरणों की १३-१४ तथा १५ मात्राओं को भी रखा है। किन्तु दूसरी और चौथी पंक्तियों की सम-मात्रिकता कभी नष्ट नहीं होने दी है। भले ही १५ मात्राओं तथा अन्त में गुरु लघु के स्थान पर लघु-लघु के साथ १३ मात्रा तथा लघु गुरू के साथ १४ मात्राओं का प्रयोग करके स्वतन्त्रता प्रदर्शित की है।[2] **श्री मोतीलालजी मेनारिया** ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसको वेलिओ गीत में लिखित बताया है।[3] **श्री नरोत्तमदासजी स्वामी** ने लिखा है—'वेलि में गीत का प्रयोग नहीं हुआ है किन्तु गीत के आधार पर बने हुऐ छंद का प्रयोग हुआ है।"[4] इस प्रकार श्री स्वामी जी ने वेलि में प्रयुक्त छंद का नाम नहीं बताया है। **डॉ० हीरालालजी माहेश्वरी** ने भी इसी प्रकार लिखा है—'इस वेलि में चारण साहित्य के छोटो साणोर गीत के एक भेद वेलियों के आधार पर बने हुए छन्दों का प्रयोग हुआ है।"[5] **श्री सीताराम जी लालस** ने वेलि की समीक्षा करते हुए इसमें प्रयुक्त छन्द के विषय में मौन ही धारण कर लिया है।[6] **श्री भूपतिराम जी साकारिया** ने लिखा है—"छोटा साणोर छंद के मुख्य चार भेदों में से वेलियो और खड़द-साणोर दो भेद हैं। वेलि में दोनों छन्दों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। अतएव यह कहना गलत होगा कि वेलि केवल वेलियो छन्द में ही लिखी गयी है। ....यह अधिक समुचित रहेगा कि वेलि के छन्द को हम छोटा साणोर ही मानें।[7] इस प्रकार श्री साकरिया जी का मत सर्वथा अस्पष्ट है।

---

१. स्व० संपादित वेलि, हिन्दुस्तानी, एकेडेमी इलाहाबाद, भूमिका पृ. १२०।
२ स्व० संपादित वेलि विश्व-विद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका पृ. ९७, ९८।
३. राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. १२४।
४. स्व० संपादित वेलि, प्रस्तावना, पृ. ७१।
५ राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ. १५९।
६. राजस्थानी हिन्दी शब्द कोष प्रस्तावना १३८, १४१।
७ श्री नरोत्तमदासजी स्वामी, स्व० सम्पादित वेलि, प्रस्तावना पृ. ७०।

महाराजा पृथ्वीराज जैसे काव्य-मर्मज्ञ और काव्यशास्त्र का संपूर्ण रूप में पालन करने वाले कवि अपनी "वेली" जैसी कृति में छन्द-शास्त्र-सम्बन्धी नियम को भंग कर स्वतंत्रता नहीं रख सकते। पृथ्वीराज ने "वेली" में "मिस्र वेलियोगीत" नामक छन्द का प्रयोग किया है जिसकी ओर अभी तक हमारे आलोचकों का ध्यान नहीं आकर्षित हुआ है। "गीत" सम्बन्धी शास्त्रीय नियम के अनुसार गीत में न्यूनतम तीन "द्वालों" का प्रयोग होना चाहिये[1] और अधिकत्तम "द्वालों" की कोई सीमा नहीं है। "वेलि" के छन्द-प्रयोग के विषय में उल्लेखनीय है कि सम्पूर्ण प्रबन्ध काव्य ३०५ द्वालों के एक ही छन्द "मिस्र वेलियों" में पूर्ण हुआ है।

'ज' वेलि का काव्य-रूप

महाकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए आचार्य दण्डी ने लिखा है—कि "अनेक सर्गों में निबद्ध काव्य को महाकाव्य कहा जाता है।[2] हेमचन्द्राचार्य ने इस विषय में लिखा है—महाकाव्यगत पद्य संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और ग्राम्य भाषाओं में होते हैं, यह सर्ग, आश्वास, सन्धि और अवस्कन्धक बन्ध होता है, इसमें सर्गों के अंत में भिन्नवृत्त होते हैं और यह शब्दार्थ वैचित्र्य से युक्त होता है।[3] आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्यगत विशेषताएं इस प्रकार बताई हैं—"जिसमें सर्गों का निबन्धन हो उसको महाकाव्य कहते हैं। इसमें नायक देवता अथवा सद्वंशोत्पन्न क्षत्रिय जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुणों का समावेश हो, होता है। कहीं एक वंश के तत्कुलीन अनेक राजा भी नायक होते हैं। महाकाव्य में शृंगार, वीर, अथवा शान्त रसों में से एक अंगी रस होता है और अन्य रसों का गौणरूप में समावेश होता है। महाकाव्य में नाटक की समस्त सन्धियां रहती हैं। महाकाव्यागत कथा सज्जनाश्रित ऐतिहासिक अथवा लोक प्रसिद्ध होती है। महाकाव्य का फल चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष में से कोई एक होना चाहिये। महाकाव्य के प्रारम्भ में आशीर्वाद, नमस्कार और वर्ण्य-वस्तु का निर्देश होना चाहिये। इसमेंकहीं खलों की निन्दा और सज्जनों का गुणवर्णन भी होता है। महाकाव्य में न बहुत छोटे और न बहुत बड़े, कमसे कम आठ सर्ग होते हैं। सर्ग में एक ही छन्द होता है किन्तु अन्तिम पद्य भिन्न छन्द में होना चाहिये। कहीं-कहीं सर्ग में अनेक छन्द भी होते हैं। सर्गान्त में आगामी कथा का सूचन होना चाहिये। महाकाव्य में सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्री, प्रदोप, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न. मृगया, पर्वत, षट्ऋतु वन, समुद्र संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय

---

१. राजस्थान भारती, बीकानेर, भाग ७, अंक १०२, पृ. १२३, १२४।

२. सर्ग बन्धो महाकाव्य मुच्यते १, १४।

३. काव्यानुशासन अध्याय ६।

आदि का जहाँ तक संभव हो सांगोपांग वर्णन होना चाहिये। महाकाव्य का नामकरण कवि, चरित्र अथवा चरित्रनायक के आधार पर होना चाहिये। कहीं महाकाव्य का नाम इसके अतिरिक्त भी होता है। सर्ग का नामकरण सर्गगत कथा के आधार पर होता है। काव्य में सर्गों का नाम आख्यान भी होता है। प्राकृत काव्यों में सर्गो का नाम आश्वास होता है जिसमें स्कन्धक एवं गलितक छन्द रहते हैं। अपभ्रंश काव्यों में सर्गों का नाम कुडवक होता है और छन्द भी अपभ्रंश के योग्य अनेक प्रकार के होते हैं।[1]

आचार्य विश्वनाथ ने खण्डकाव्य के लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है— कि काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।[2]

पृथ्वीराज कृत वेलि में महाकाव्यगत केवल निम्नलिखित लक्षण मिलते हैं—

(१) नायक श्रीकृष्ण नायकोचित गुणों से सम्पन्न होते हुए पूर्ण ब्रह्म परमेश्वर हैं।

(२) वेलि में भक्ति का विस्तृत निरूपण होते हुए भी शृंगार का प्राधान्य है और अन्य रसों का गौण रूप में समावेश हुआ है।

(३) काव्य की शैली पूर्ण रूपेण अलंकृत है।

(४) काव्य का नामकरण सम्बन्धित कथा वस्तु के आधार पर हुआ है।

(५) काव्य "मिस्र-वेलियो गीत" नामक छन्द में लिखा है।

(६) वेलि के आरम्भ में मंगलाचरण आशीर्वचन और वस्तुनिर्देश आदि हैं।

(७) वेलि की कथावस्तु लोकप्रसिद्ध और सज्जनाश्रित है।

(८) वेली में मन्त्रणा, संदेश, सेना, युद्ध, यात्रा, नगर, प्रातः, सन्ध्या, विवाह आदि के वर्णन हैं। वेलि धर्म, अर्थ काम और मोक्ष-प्राप्ति में सहायक मानी गयी है।

वेलि में महाकाव्यगत उक्त प्रकार के लक्षण होते हुए भी महाकाव्य जैसा कथाविस्तार नहीं है और यह सर्गवद्ध भी नहीं है। अतएव आचार्य विश्वनाथ द्वारा निर्देशित लक्षणों के अनुसार वेलि को खण्डकाव्य कहना ही उचित होगा।

'झ' पृथ्वीराज रचित वेलि और कर्मसिंह सांखला रचित वेलि

पं० नरोत्तमदास जी स्वामी ने पृथ्वीराज रचित वेलि को डिंगल में लिखित वेलियों में प्राचीनतम माना है।[3] किन्तु पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व सांदू रामा रचित

---

१. साहित्य दर्पण षष्ठः परिच्छेद, श्लो० सं० ३१५, ३२७।

२. साहित्य दर्पण, परिच्छेद ६, श्लोक ३२९।

३. स्व० संपादित वेलि, संपादकीय प्रस्तावना, पृ. २३।

"वेलि राणा उदयसिंह री"[१] की रचना वि० सं० १६२८ अथवा इससे पूर्व मानी गई है।[२] पृथ्वीराज और कर्मसिंह की वेलियों की तुलना करते हुए डॉ. हीरालालजी माहेश्वरी ने लिखा है—"महत्वपूर्ण बात यह है कि करमसी की वेलि का राठौड़ पृथ्वीराज ने अनुकरण किया है—उन्होंने सीधी प्रेरणा वहीं से पाई है। अपनी वेलि को लिखते समय पृथ्वीराज के सम्मुख एक आदर्श के रूप में यह वेलि अवश्य रही है।"[३] पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि उक्त दोनों ही वेलियों के रचनाकाल अद्यावधि अप्राप्य हैं। प्रतिलिपि-काल अवश्य ही कर्मसिंह कृत वेलि का वि० सं० १६३४ मिलता है,[४] और यह प्रतिलिपि काल पृथ्वीराज कृत वेलि के उपलब्ध प्राचीनतम प्रतिलिपि-काल वि० सं० १६६९ से[५] प्राचीन है। प्रतिलिपिकाल के आधार पर ही किसी कृति का रचनाकाल नहीं निर्धारित किया जा सकता और न इसी आधार पर किसी कृति को किसी अन्य कृति से पर्ववर्ती कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में डॉ० हीरालाल माहेश्वरी द्वारा कर्मसिंह कृत वेलि का अनुकरण पृथ्वीराज कृत वेलि में निर्धारित करना[६] समीचीन नहीं ज्ञात होता। कर्मसिंह कृत वेलि का अन्तिम २२वां "द्वाला" पृथ्वीराज कृत वेलि के ३०४ संख्यक 'द्वाले' के रूप में उपलब्ध होता है। यह द्वाला क्षेपक अथवा लिपिकर्त्ता की भूल प्रतीत होती है। उक्त दोनों ही वेलियां समान रूप में काव्य कला, भाव और भाषा की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।

'ग' क्रिसन रुक्मिणी री वेलि की टीकाएं

महाराजा पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेलि की लोकप्रियता और प्रसिद्धि का प्रमाण इस पर लिखी गयी विभिन्न टीकाओं से मिलता है। वेलि का जैन धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है तथापि श्री अगरचन्द नाहटा के मतानुसार जैन कवि यों द्वारा रचित दो संस्कृत और चार राजस्थानी टीकाएं उपलब्ध होती है।[७]

---

१. ए डिस्क्रिप्टिव केटलॉग आफ बार्डिक लिटरेचर, डॉ. तेस्सीतोरी, खण्ड २, भाग १ पृ. ६।
२. डॉ० हीरालालजी माहेश्वरी राजस्थानी, भाषा और साहित्य, पृ. १६२।
३. वही पृ १६२।
४. अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, ह० प्र० सं० ९९।
५. अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति।
६. राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ. १६२, १६६।
७. राजस्थान भारती, बीकानेर पृथ्वीराज राठौड़ जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक, मई १९६१ पृ. २९।

वेलि की प्रधान टीकाएं इस प्रकार हैं—

(१) लाखा जी चारण की टीका—

लाखाजी चारण ने राजस्थानी ढूंढाड़ी बोली में वेलि की टीका संवत् १६७३ में लिखी थी। इस टीका का उल्लेख वाचक सारंग ने संवत् १६७८ विक्रमी में पालनपुर में रचित अपनी संस्कृत टीका में भी किया है। साथ ही वाचनाचार्य जयकीर्ति ने संवत् १६८६ माघ मास में रचित अपनी टीका में भी लाखा चारण की टीका का उल्लेख किया है। किसी प्राप्त टीका में लाखा चारण का नाम उपलब्ध नहीं हुआ है जिससे लाखा चारण की टीका अप्राप्य मानी जाती थी। श्री अगरचन्द नाहटा के प्रयत्न से लाखा जी चारण नाम सहित यह टीका उपलब्ध हो चुकी है।[1] इस टीका का प्रारम्भिक अंश निम्न लिखित है—

ध्यात्वा श्री गुरु पादपद्मयुगलं श्रीमन्मुरारैः पदां ।
वल्या प्रारमतं जनप्रिय करी टीकां लखाख्य कवि ।।
दृष्टवा हृत्सरसीरुहे बहुतरं तोषं कवीशा दधुः ।
दोषो न प्रतियति यत्र पटुतां तां नंदसूनुर्मृश्म् ।।१।।

लाखा जी चारण की यह टीका प्रकाशित हो चुकी है ।।[2]

(२) कवि सारंगकृत संस्कृत टीका—

कवि सारंग ने सुबोधमंजरी नाम से वेलि की संस्कृत टीका वि. सं. १६७८ में पालनपुर नामक स्थान में लिखी। टीकाकार के गुरु पद्मसुन्दर भी विद्वान और कुशल कवि थे, जिनकी रचनाओं का परिचय जैन गुर्जर कवियों भाग १, ३ में उपलब्ध होता है। सारंग कवि कृत "विल्हण पंचासिका" चौपाइ भाग छत्तीसी सोपग्य वृत्ति (जालोर में सं. १६७५ में रचित) और जगदम्बा छंद आदि उपलब्ध हो चुके हैं।[3]

"सुबोधमंजरी" टीका के आद्यन्त अंश इस प्रकार हैं—

श्री पार्श्वजिनमानम्य गोपेज्यं दशजन्मकम् ।
पृथ्वीराजः शुभावल्लीं विवव्रेऽर्थ फलाप्रये ।।१।।
गुणिनो बहवः सन्ति संस्कृतज्ञा महाशयाः ।
परं प्राकृतलोकोक्ति भाषास्वल्पधियो बुधाः ।।२।।

---

१. लाल भवन, जयपुर, का हस्तलिखित ग्रंथ संग्रह।
२. "वेलि किसन रुक्मिणी री" हिन्दुस्तान एकेडमी इलाहबाद परिशिष्ट 'क'।
३. अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

अन्तिम अंश—

अथ ग्रन्थान्ते मंगलार्थं स्वामीस्वामिन्योर्नामग्रहणमुक्तिमण्याः नृप लक्षणानि गुणांश्च वक्तुं स्तोतुं कः समर्थतरोऽस्ति न कोऽपि परं मया स्वमत्यनुसारतः यादृशाः ज्ञाताः गोविन्दस्य राज्ञा तस्याः गुणाः तादृशा अत्र ग्रन्थे कथिताः निबद्धा जल्पिता इति यावत् । तेन मूर्खस्यापि ममोपरि कृपा कर्त्तव्या इति यदुक्तम्—

दूहा—वेंग विसम्मा केसवा के अमरम्म मरम्म ।
घाट न जोवइ जग घडन जोवइ प्रेम परम्म ॥
सुबोध मंजरी नाम्ना टीकोपकृतिकारणम् ।
गुणि नामर्थवत्येषां चिरं नन्द्यात्सुसौख्यदा ॥
इति सुबोधमंजरी टीका संपूर्ण (संपूर्णा) कृता वाचकं सारंगेण ।
संवत् १६८३ श्री वैशाखमासे कृष्ण त्रयोदश्यां लिखितं सम्पूर्णम् ।

३. कवि कक्क लिखित संस्कृत टीका -

वेलि पर एक अन्य संस्कृत टीका भी प्राप्त हुई है । इसका टीकाकार अज्ञात है । कच्छभुज में कवि कक्क द्वारा सं. १७५० वि. में लिखित इस टीका की प्रति प्राप्त हुई है ।[1] जिससे प्रकट होता है कि इस समय से पूर्व इसकी रचना हुई अथवा स्वयं लिपिकार ने ही इस टीका की रचना की है । टीका की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कक्क स्वयं संस्कृत का विद्वान एवं कवि था ।

४. श्रीसार रचित संस्कृत टीका

श्री सार खरतर गच्छीय रत्नहर्ष के शिष्य थे । इनके रचित आनन्द सन्धि आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं[2] । श्रीसार ने यह टीका शाहजहाँ के राज्य-काल में लोहार में द्रविड़ कृष्णानन्द के लिए विजयदशमी सं. १७०३ वि. में पूरी की थी । टीका का प्रारंभिक और अन्तिम भाग इस प्रकार है—

आदि—

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमनेकमेकं, निः स्तव्य मव्ययमनं गमसङ्गमग्र्यं ।
सिद्धार्थ सर्व गतिमर्थरितं समर्थं, निर्माण कर्मीश महं नमामि ॥१॥

× ×

---

१. राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, केन्द्रीय पुस्तकालय, जोधपुर, ग्रंथ संख्या ६१४ ।

२. युगप्रधान जिनचन्द्र सूरि, संपादक श्री अगरचन्द नाहटा, अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, पृ. २०७ ।

अन्त—

कृष्णनन्दाज्ञा यज्ञे या कृश्नानंददायिनी।
वल्ली वृत्ति सका चन्द्रार्कीयाज्जयताद् भुवि ।।१।।
चिकिर्षति मनः स्थाणु महाराज सदस्सुधे।
कुर्वंतु ते कविन् जेतु मथ्रतां पंजिकां हृदि ।।७।।
इति श्रेयस्सदाऽ। संवत् १८१६ वर्षे मिति फागुण।
सुदि ५ दिने ।। लिखितं । पं.। अभय कमल मुनि।
श्री पुहकरण मध्ये ।। श्री रस्तु । कल्याण मस्तु ।।[1]

५. शिवनिधान कृत राजस्थानी टीका—

उपाध्याय शिवनिधान खरतर गच्छीय जैन विद्वान थे । इनका रचनाकाल सं. १६५२ से १६६२ तक है और उनके रचित अनेक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।[2] इस प्रकार शिवनिधान कृत टीका का समय भी सं. १६५२ से १६६२ वि. के मध्य मानना चाहिए। टीका का आदि और अंत इस प्रकार है—

आदि—

श्री हर्ष सार सतगुरु चरण जुगोपास्ति लब्धि विज्ञानः । विदधाति शिवनिधानों अर्थ वल्ला बालव बोध कृते ।।१।।

टीका—राउ श्री कल्याणमल पुत्र राज श्री पृथ्वीराजजी राठौड वंशी ग्रन्थ नी आदि मंगल निमित (श्री कृष्ण रुकमणि मंगल वेलिनी आदि इ अभीष्ट) इष्ट देवता ने नमस्कार करइ।

अंत—

वल्ली विवकरण मेतत् रचित खरतर शिवनिधानैः।
शोध्यं सद्भि दुष्टाशिष्ट सभा भवतीह ।।१।।

शिवनिधान कृत टीका की अनेक प्रतियां उपलब्ध होती हैं। यथा—

(१) वेलि (बालावबोध) पत्र ८१ लेखन सं० १७३८ छंद ३०४ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रन्थांक ३६४२।

(२) श्रीलता (सटबार्थ) पत्र ३३ लेखन सं० १७६६ पद्य ३०६ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक २०६६।

---

१. गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर।

२. (क) श्री अगरचन्द नाहटा, दादा श्री जिनदत्त सूरि।

(ख) राजस्थान भारती, पृथ्वीराज राठौड़ जयन्ती विशेषांक का परिशिष्टांक, शार्दूल राजस्थानी रिसर्च इन्सटीट्यूट, बीकानेर, मई १६६१, पृष्ठ ३१।

(३) वेलि (सस्तबक) पत्र २८ लेखन सं० १७८९ पद्य ३०४ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ४०७७।

(४) श्री कृष्ण रुखमणि वेलि, पत्र २७ लेखन सं० १७०६ सरस्वती भंडार उदयपुर ग्रंथांक ८०२।

(६) जयकीर्ति कृत टीका—

जयकीर्ति कृत टीका का नाम "वनमाली वल्ली बालावबोध" दिया गया है। वाचनाचार्य जयकीर्ति खरतर गच्छीय महोपाध्याय समय सुन्दर केप्रशिष्य थे। इनकी अन्य रचनाएं इस प्रकार हैं—

(१) जिनराज सूरिरास (सं० १६८१)

(२) षडावस्यक बालावबोध (सं० १६९३)

(३) कालकाचार्य कथा।

जयकीर्ति ने अपनी टीका बाघमल के पुत्र पारस की प्रार्थना पर सं १६८६ वि० के माघ मास में बीकानेर के महाराजा सूरसिंह जी के राज्यकाल में की। टीका के आदि और अन्त के अंश इस प्रकार हैं—

आदि सरसति माता समरि वइ प्रणमी सदगुरुपाय।
वनमाली वल्ली तणी बात कहुं विगताय ॥१॥
चावउ जगि भाषा चतुर चारण लाखउ चंग।
कीधउ पहिली वार तिक अरथिन उपजइ रंग ॥२॥
ग्वालेरी भाषा गुपिल मंद अरथ मती भाव।
बात बंध किय भाषावितु समझण तिय समभाव ॥३॥
चतुर विचक्षण चतुर मतिः रवि तलि पंडित राय।
सकल विमल भाषा सुधी कवि सारंग कहाय ॥४॥
जिण कवि भासा जोर करि संस्कृति भापि सुजाण।
अरथ कह्यउ लागइ विषम वदइ न मंद वखाण ॥५॥
गीर्वाण भाषा भागवत वल्ली जनक सु वीज।
कारिज हुं कारण कहूं उपजइ जउ इम कीज ॥६॥
सूत्र कह्यउ अपभ्रंस मंइ विवुध गिरा मंइ वृत्ति।
मूल सुगम टीका विषमः चड़इ न रचना चित्ति ॥७॥
भाषा कवि जन कुं भली बात (अरथ) जइसि वूझि।
तइसी संस्कृत अरथ की रहइ न कबहू रीझि ॥८॥
तिणि कविजन कुं कौतुक भणी सुगम विशेष सुभापि।
लिखुं अरथ हूं वेलि कउ, दक्ष बाल हित दाखि ॥९॥

अंत—

युग प्रधान जिणचंद इंद परि दीप्पउ दीवउ ।
शीश प्रथम तसु सकलचंद इण नामइ चावउ ।।
बड़ भागी उम काय शीश मुनिवरे शिरोमणि ।
समय सून्दर सिरदार मही प्रतपइ ज्युं दिन मणि ।।
वादियां राय वाचक प्रवर हरषनंदन पग काय चै ।
सुविनीत वेलि विवरण सुगम वाणारिस जयकीरति वदई ।।१।।

सय सोलह छासियइ वरस मिगसर वर मासइ ।
वीकनयरि महाराय राजि सूरिजसिंह हरसइ ।।
खरतर गछि गह गहइ सूरि जिन राज सूरीश्वर ।
आचारिज अधिकार सूरि कहीयई जिनसागर ।।
वियमान छतां राउ राठउड़ कल्याणमल सु पृथु करी ।
श्री किसन वेलि ए कवि जने अरथ बात किय आपरी ।।२।।

सुघड़ थकइ जिणी किसन, वेलि मुखि पाठ अणावी ।
आगम अर्थ उत्तपति विबुध कविजने वतावी ।।
सांभलि एम सुजाण कह्यउ विवरण ए कीजइ ।
भणतां सुणतां मलउ सुयश सगलर स लहीजइ ।
वाद्यमल्ल सुतन इम वीनती पारस करतउ ओपीयउ ।
वालाववोध ए वेलि रउ जयकीरति जुगतउ कीयउ ।।३।।

जग सगलइ जूजुया, पाठ दीसइ वहु परते ।
सूत्र तणइ अनुसार कवीजन विवरण करते ।।
मंद मति त्यामोह आणि संदेह धरइ इम ।
सूत्र अरथ लिख्यउ शुद्ध लेणइ पार जिणै तिम ।।
वीनति अछइ विबुधां परइ ख्याति करे कीजइ खटउ ।
वालाबोध ए वेलि रउ वाचतां जगि विस्तरउ ।।४।।

।। इति श्री वनमाली वल्ली वालाववोध संपूर्णम् ।।

कवि जयकीर्ति कृत टीकाओं की अन्य प्रतियां इस प्रकार है—

(१) वेली (वालाववोध) पत्र ३५ लेखन सं. १७९८ छंद ३०६ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ३३४३ ।

(२) वेल (वालाववोध) पत्र ७३ लेखन सं. १७६६ पद्य ३१० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ३५४८ ।

(३) क्रिसन रुकमणि री वेली (सटीक) पत्र ३६ लेखन सं. १६८३ छंद ३०५ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक १८/४६० ।

(७) कुशलधीर कृत टीका—

कुशलधीर खरतर गच्छीय जिन माणिय सुरि की परम्परा में कल्याण लाभ के शिष्य थे। इन्होंने वेलि की वालाववोध टीका अपने शिष्य भावसिंह के लिये विजयादशमी संवत् १६९६ विक्रमी में वनाई थी। इस टीका का संवत् १६९८ में लिखित प्रति स्वर्गीय पूर्णचन्द नाहर संग्रह कलकत्ता में सुरक्षित है। कुशलधीर रचित टीका के आदि और अंत के उद्धरण इस प्रकार हैं—

आदि—

प्रणिपद्यादियपुरपं, सरस्वती सदगुरुंश्च संस्मृत्य।
कुर्वे मुरारिवल्ल्याः वार्तिक मति सुगममखिलगुणं ॥१॥
प्रतिपदमनुपम यतियुतमर्थ यो वेत्ति तस्य शोभा स्यात्।
मत्वेति सकल सुखदं निरुपयाम्यर्थमाक्षेपात् ॥२॥
पूर्वमपिसंति केचन कथिताः कविभिस्तु वार्तिका रम्याः।
तैर्खे वोधस्ताहृण न जायते तेन विदधेहं ॥३॥
संसदि संसदि वहवः प्रश्नं कुर्व्वन्ति को विदांमनुजाः।
तेनैषा पृथु कथिता वल्लीमान्येति पठनीया ॥४॥
पठनमर्था च वोधं विना न शोभेत तेन मे मनसि।
जातोयमुद्यमः तां सफलस्ताद्देव गुरु सक्तसा ॥५॥

अंत—

श्री जिन माणिकसरि तास शिष वाचक तेहा।
कल्याणधीर गणि कहुं जती ध्रम गौतम जेहा।
कल्याणलाभ गुणवंत तास शिष्य वाचक कहीयइ।
जपतां नपतां जास लाब्धि लीला सुख लहीयइ।
अनुग्रहइ तास शिष इण परइ क्रिसन वेलि विवरण कीयउ।
कहइ कुशलधीर कंठ पाठ करि अरथ भेद अमृत पीयउ ॥१॥
सोलहसो छिन्नवइ मास आसू शुभ मासइ।
विजयदशमी गुरुवार एह विवरण उल्हासइ।
खरवइपुर खंति सुं करि आदर इम किद्धउ।
विगति सरि वांचज्यो, सूत्र अनुसारइ सिद्धउ।
कहइ कुशलधीर पृथुदास कृत वनमाली वल्ली तणउ।
वालाववोध जगि वांचतां धणी नूमि प्रसरइ घणउ ॥२॥

गुरुभाई गुणवंत कमलकीरति कहीज्जइ।
कनकविमल शुभ क्रम, सहु सयणा स लहिज्जइ।
शिष्य मुख्य सुविचार भावसिंह मुज्झ भणीज्जइ।
आग्रह कीधउ अधिक वेलिचउ विवरण किज्जइ।
जग मांहि जुगति करी जूजुइ पूछइ कवि पंडित प्रतइ।
तिण हेतु तुरंत उत्तर दियण अरथ लिख्यउ कवि सम्मतइ ॥३॥

कौटिक गच्छ खरतरइ जगति व्रतमान जोगीसर।
श्री सोहम अनुक्रमइ सूरि जिनराज सूरीसर।
तासु शोस अतिदक्ष राम सम राम सुलक्षण।
वर पाठक पद धार अनुज मुझ भ्रात विचक्षण।
बालावबोध अउ वेल एउ खंतइ ते वाचउ खरउ।
कहइ कुशलधीर भावइ करी विवुध वाणीए विस्तरउ ॥४॥

कियउ पाठ अनुसारि अरथ मइ एह उकति करि।
विबुधा प्रति वीनति हरखि शुद्ध करउ जुहित धरि।
सुघउ वइसि शुभ सभा रंगि वाचउ लहि अवसरि।
ग्रन्थ मान इण ग्रन्थ सहस कइ त्रिकशत ऊपरि।
श्रीकृष्ण वेलि विवरण सकल कुशलधीर वाचक कहइ।
जे भणइ गुणइ मन सुधि सुणइ लीला लखमी ते लहई ॥५॥

॥ इति श्रीकृष्ण वेलि बालावबोध प्रशस्ति ॥

संवतसोल अठाणवे वर्षे फागुण वदी छदिने गुरुवारे। श्री खरतर गच्छाधीश्वर भट्टारक श्री जिनमाणि क्यसुरि राजानां शिष्य वाचक वर श्री कल्याणधीर गणि शिष्य वाचनाचार्य श्री कल्याण लाभगणि शिष्य पंडित कुशलधीर गणिनां राठउड़ कुलावतंश पृथ्वीराज कृत श्री नारायण वल्ली बालावबोधः कृतः शिष्य पंडित भावसिंह मुनिना लेखि पंडित तेजसी प्रमुख मुनि जनैर्वाच्यमाना चिरं नन्दतु ॥ शुभंभवतु ॥

कुशलधीर कृत टीका की कतिपय अन्य प्रतियां इस प्रकार हैं :—

(१) वल्ली (सविवरण) पत्र ४३ लेखन सं. १८२६ पद्य ३०६ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ४०७६।

(२) श्रीकृष्ण वेलि पत्र ५३ लेखन सं. १७१८ छंद ३०५ बड़ा उपाश्रय रांगड़ी चौक बीकानेर ग्रंथांक ३३/४६०।

(८) नयारंग कवि की कुछ टीकाएँ इस प्रकार हैं—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र ४१ लेखन सं. १६८३ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ९/१३।

(२) किसन रुकमणी री वेलि पत्र १६१-१८३ लेखन सं. १७१८ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ७८/७८।

(९) महन्त सूरदास द्वारा लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (मूल) अपूर्ण रचना काल सं १६६९ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ३८/३८।

(१०) सारंग कवि की अन्य टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) रचनाकाल १६८३ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी ग्रंथांक ९/१३।

(११) मथेण गुइंद आरा मुंहता मुकन्ददास पठनार्थ लिखी गई—

(१) किसन रुकमणी री वेलि पत्र १०-११८ रचनाकाल १७१९ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ४५/४६।

(१२) मोहकमसिंह द्वारा लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (मूल) पत्र ६१-११३ रचनाकाल १७२८ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ६/६।

(१३) पेमराज द्वारा लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेली (मूल) पत्र ६६-१२० रचनाकाल सं. १७२४ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़, बीकानेर ग्रथांक ७/७।

(१४) मोहनलाल द्वारा हनुमानगढ़ (भटनेर) में लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि पत्र १६ रचनाकाल १७४० अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ५/५।

(१५) परिव्राजक विष्णुगिरि द्वारा बीकानेर में लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (मूल) पत्र २० रचनाकाल १७७८ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ४/४।

(१६) कुशलसिंह द्वारा चूरू में लिखित टीका—

(१) किसन रुकमणी री वेलि पत्र ३७ (५९-९५) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़, बीकानेर ग्रंथांक ६/६।

(१७) वरसलपुर में टीकाकार पुरोहित लक्ष्मण द्वारा लिखित—

(१) किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक २०/२०।

(१८) टीकाकार लक्ष्मीवल्लभ द्वारा रचित टीका—
  (१) वेलि (बालवबोध) पत्र ३० पद्य ३०५ श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

(१९) पं दानचन्द्र द्वारा रचित राजस्थानी में टबार्थ टीका—
  (१) पृथिराज वेलि (सस्तबक) पत्र ५१ छंद ३०५ महिमा भक्ति जैन-ज्ञान भंडार बड़ा उपाश्रय रांगड़ी चौक बीकानेर रचनाकाल १७२७ ग्रंथांक ३३/४८५।

(२०) अज्ञात कर्तृक टीकाएं—वेलि की ऐसी टीकाएं भी उपलब्ध होती हैं जिनके साथ कर्त्ताओं के नाम नहीं दिये गये हैं। कतिपय टीकाओं का विवरण निम्न-लिखित है—
  (१) वल्ली संस्कृत टिप्पण सहित पत्र २० पद्य ३०१ लेखन संख्या १७५० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ९१४।
  (२) वेलि (मूल) पत्र १५ पद्य ३०४ रचनाकाल १६३७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर लिपि १९वीं शती ग्रंथांक ८८०।
  (३) वेलि (रस विलास टीका पद्य वही) पद्य २० छंद ३०६ लिपि १८वीं शती राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं.१६३८ ग्रंथांक १८३५।
  (४) वेलि (मूल) पत्र ३४ पद्य ३०६ लिपि १८६७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं. १६३७ ग्रंथांक ८९४।
  (५) वेल (सटीक) पत्र ६९ पद्य ३०४ रचनाकाल १६३८ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर लिपि सं. १७९१ ग्रंथांक ३५५७/२।
  (६) वेलि (सार्थ) पत्र ६७ पद्य सं. ३१३ लिपि १७९२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना काल १६३७ ग्रंथांक १८६८/४।
  (७) वेल (सार्थ) पत्र ४६ पद्य ३०२ लिपि सं. १७२२ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना काल १६३८ ग्रंथांक २०७०।
  (८) वेल (सार्थ) पत्र २७ पद्य २९९ लेखन १८वीं शती राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं. १६३८ ग्रंथांक ४०७८।
  (९) वेल (सार्थ) पत्र १६ छंद ३०६ लेखन सं. १८१७ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ४४५२।
  (१०) वेल (सटीक) पत्र २४ पद्य ३०४ लेखन सं. १७४५ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं. १६३८ ग्रंथांक ४८३८।

कृष्ण रुकमणी जस वाद (सटीक) पत्र ४० पद्य ३०६ लेखन सं.
०० राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं. १६३८
ंक ८२५३।

वेल (सार्थ) पत्र ३२ पद्य ३०१ लेखन सं. १७४७ राजस्थान प्राच्य
ा प्रतिष्ठान जोधपुर रचना सं. १६३८ ग्रंथांक ६१४४।

राधा कृष्ण चरित्र (मूल) पत्र १६ छंद ३०६ लेखन सं. १७८१
स्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ६२५२।

ठ (मूल) पत्र ४२ (२६–७०) छंद ३०६ राजस्थान प्राच्य विद्या
ष्ठान जोधपुर लेखन सं. १७२७ ग्रंथांक ६२६६।

ण रुकमणी गुण मंगलाचार वेल (सटीक) पत्र ८२ छंद ३०५ लेखन
वीं शती राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ६४२०।

ठ (सवाला बोध) पत्र ३० पद्य ३०६ लेखन सं. १७६६ राजस्थान
च्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथाक ११०६०।

ली (मूल) पत्र २१ (५६–७६) छंद ३०२ लेखन सं. १७१४ राजस्थान
च्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर ग्रंथांक ११५८४।

कृष्ण रुकमणी गुण वेलि (सटीक) पद्य ३०८ लेखन सं. १७४५
जस्थानी शोध संस्थान चौपासनी, जोधपुर।

सन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र २६४ लिपि सं. १६७३ अनूप
स्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक १८/१८।

सन रुकमणी री वेलि (सटीक सचित्र) पत्र ३८ लिपि सं. १६६७
नूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ८/७।

किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र १४१ लिपि सं. १६६६ अनूप
संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक ६/१४।

किसन रुकमणी री वेलि लिपि सं. १७५३ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी
लालगढ़ बीकानेर ग्रंथांक १६/१६।

किसन रुकमणी री वेल (सटीक,सचित्र) छंद ३०० लिपि सं. १८०८
अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथांक ११/११।

किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र ८१ लिपि सं. १८२६ अनूप
संस्कृत लाईब्रेरी लालगढ़, बीकानेर, ग्रंथांक १०/१०।

किसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र २३-४६ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी
लालगढ़, बीकानेर ग्रन्थांक १२/१२।

(२६) क्रिसन रुकमणी री वेलि पत्र ११५ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी लालगढ़ बीकानेर ग्रन्थांक १५/१५।

(२७) क्रिसन रुकमणी री वेलि (सटीक) पत्र १३५ अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर ग्रन्थांक १६/१६।

(२८) क्रिसन रुकमणी री वेलि, अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, लालगढ़, बीकानेर, ग्रन्थांक ५२/५२।

(२९) श्रीकृष्णदेव रुकमणी वेलि (मूल) पत्र २१८ से २२७ लिपि सं. १६६९, पद्य सं. ३०१ अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

(३०) वेलि रुकमणीजी कृष्ण जी री (सटीक) पत्र ४२ से १२३ पद्य २८७ लिपि सं. १७०५, श्री अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर।

(३१) क्रिसन रुकमणीजी री वेल पत्र ३०, पद्य ३०३, लिपि सं. १७४१ श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर, रचना काल १६३६, ग्रंथांक ७४०५।

(३२) प्रथीराज कृत वेलि (सटीक, सचित्र) पत्र ८२, लिपि सं. १८०७ श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

(३३) वेलि (सटीक, बालवबोध) पत्र २४ पद्य २९९, लिपि सं. १८१९ श्री अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर ग्रंथाक ७४०६।

(३४) श्री क्रिसन जी री वेलि, पत्र २१, पद्य ३०४, श्री अभय जैन ग्रंथालय बीकानेर, ग्रंथांक ७४०४।

(३५) क्रिसन रुकमणी री वेल, पद्य ३०२, श्री अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

(३६) श्री कृष्ण वेलि (मूल) पत्र ३५, पद्य ३००, लिपि सं. १७१९ खजान्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर ग्रंथांक २८।

(३७) क्रिसन रुकमणी री वेल (सटीक) पत्र ३४, छंद ३०५, लिपि सं. १७५४ खजान्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

(३८) श्री कृष्ण वेलि(सटीक) पत्र २२, पद्य ३०९, लिपि सं. १७७२ खजान्ची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

(३९) श्री प्रथीराज वेल (मूल) पद्य २९५ खजान्ची कला-भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

(४०) क्रिसन रुकमणी री वेल (मूल) १२७ पद्य (अपूर्ण) खजान्ची कला-भवन पुस्तकालय, बीकानेर।

(४१) श्री कृष्ण रुकमणीजी री वेल, पत्र ३१, पद्य ३०३ लिपि सं. १७२२, वड़ा उपाश्रय, रांगड़ी चौक, बीकानेर ग्रंथांक ३६/५७७।

(४२) श्री पृथिराजजी री वेलि (सटीक) पत्र ८२ (१५३-२३४) पद्य ३०१ लेखन सं. १७३५ सरस्वती मंडार उदयपुर, रचना सं. १६४४ ग्रंथांक ४१६।

(४३) वेलि प्रिथिराज री (मूल) पत्र ५९ (७३-१२६) पद्य ३०४, लेखन सं. १६९६ सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रंथांक ५६५।

(४४) किसन रुकमणी री वेलि (मूल) पत्र ७ (२०४-२३०) पद्य ३१०, लेखन सं. १७२७, सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रंथांक ५३२।

(४५) वेलि (सचित्र-सटीक) पत्र ९५ सरस्वती मंडार, उदयपुर, ग्रंथांक ६४५।

(४६) वेलि कृष्ण रुकमणी री, लेखन सं. १७०१, सरस्वती मंडार, उदयपुर, ग्रंथांक २६३।

(४७) कृष्ण रुकमणी गुण वेल (सटीक) पत्र ३८, पद्य ३०७, लेखन सं. १८००, संग्रहालय और सरस्वती मंडार, कोटा, ग्रंथांक १५३/१७।

(४८) किसन रुकमणी वेलि (सटबा-सचित्र) पत्र ३६, पद्य सं. ३०४ रचना सं. १६३७, मुनि श्री पुण्यविजय जी संग्रह, अहमदाबाद।

'ट' वेलि संस्तुति —

कविवर पृथ्वीराज कृत वेलि "किसन रुक्मिणी री" एक भक्त कवि की उत्कृष्ट और सरस रचना है जिसकी प्रशंसा में देश-विदेश के अनेक विद्वानों और भक्तजनों ने अपने उद्गार प्रकट किये हैं। पृथ्वीराज के समकालीन कवि दुरसाजी आढ़ा ने वेलि को पंचम वेद और उन्नीसवां पुराण लिखते हुए पृथ्वीराज के वचनों को व्यास के समान बताया है—

'गीत'

रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै बखाण।
पांचमौ वेद माखियौ पीथल पुणियौ उगणीसमौ पुराण ॥१॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु किसन-सी गुण तवियौ।
चिहुं पांचमौ वेद चालवियौ, नव दूगम गति नीगमियौ ॥२॥
मैं कहियौ हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा माखियौ समोवड़ ब्रह्म तणा माखिया वड ॥३॥[1]

पं. नरोत्तमदास जी स्वामी के लेखानुसार एक ह. प्र. में उक्त गीत गाडण रामसिंह कृत लिखा गया है।[2]

---

१. राजस्थानी भारती, बीकानेर, भाग ७ अंक १. २, पृ. ५७।

२. स्व. सम्पादित वेलि, संपादकीय प्रस्तावना, पृ. २५।

कवि मोहनराम जी ने वेलि और पृथ्वीराज की संस्तुति में लिखा है कि वेलि की रचना में समस्त देवी-देवताओं की प्रेरणा-शक्ति पृथ्वीराज को रही है—

"गीत

रुकमणि वणी वेलि पृथीराज रची, उदधि वास कीधौ उदरि।
बुद्धि गजमुख बौलिवै विदुखा, पुणिया वाइक व्यास परि ॥१॥
श्रवणै ब्रह्म सबद तको संचरियौ, नयण अरक इंद उभै निवास।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समंहरि, अवलि दीपवै तणी उजास ॥२॥
विस जागण ब्रहम उकति ताई वंधी वाहु हणू भणियौ तो वीर।
रुति खट अंगि उर मा [ ] सुरती, धरणी अखिर मेर सधीर ॥३॥
पठिवै गंग प्रवाह प्रवाणी, सुणतां अम्रित पान समथ।
मांड प्रभू री माथ प्रथ माखण, परगट कीधी लता प्रथ ॥४॥[1]

भोजक जादव ने पृथ्वीराज कृत वेलि को, अमृत-वेलि लिखा है—

वेद वीज जलवयण, सुकवि जडमंडी सधर।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोज वइ लिखमीवर ॥
पसरी दीप प्रदीप, अधिक महि रई आडम्वर।
जे जंपई मन सुधि, अव फल पामैं अंतर ॥
विस्तार कीध जुग-जुग विमल धणी किसन कहिणार घन।
अमृत वेलि पीथल अचल, तई रोपी किल्याण तन ॥१॥

इति कलस ज्यादव। कृतम्॥ भोजक जादव कृतम्। वेलि को छई ॥१॥ श्रीराम सत्य[2]

उक्त कवि नाभादासजी ने अपने भक्तमाल नामक ग्रन्थ में पृथ्वीराज को नर और देव दोनों भाषाओं में निपुण बताते हुए श्लोक, सवैया, गीत, दोहा और वेलि के रूप में नव रसों का निर्माता लिखा है। भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास ने नाभादास कृत पद्य के आधार पर पृथ्वीराजकी अलौकिक लीलाओं का वर्णन किया है—

"मूल"

नरदेव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव।
सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस।

---

१. राजस्थान भारती भाग ७, अंक १, २ पृष्ठ ५८।
२. अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर की संवत् १६६६ वाली प्रति के अनुसार।

पिंगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायो हरिजस।
पर दुख विदुख श्लाध्या, वचन रचना जु विचारै।
अरथ कवित्त निरमोल, सबै सारंग उर धारै।
रुक्मिनीलता वरवन अनूप वागीश वदन कल्याण सुव।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ॥

'टीका'

मारवाड़ देश वीकानेर को नरेस वजै, पृथ्वीराज नाम भक्तराज कविराज है।
सेवा अनुराग और विषै वैराग यशो, रानी हूं पहिचानी नाहि मानों देखि आजु है।
गयो हो विदेश वहां मानसी प्रवेश कियो, यो नहीं धुवै कैसे सेर मन काजु है।
बीते दिन तीन प्रभु मन्दिर न दीठ परै, पीछै हरि देखि भयो सुख को समाजु है।
लिखि के पठायो देस सुन्दर संदेस इहै, मन्दिर न देखे हरि बीते दिन तीन है।
लिख्यो आयो सांच वाचि अति ही प्रसन्न भयो, लगे राज वैठे प्रभु वाहर प्रवीन है।
सुनो एक और यों प्रतिज्ञा करो हियैधरी, मथुरा शरीर त्याग करै रस लीन है।
जीवन अवधि रहे निपट अलप दिन, कलप समान बीते पलन विहात है।
आगम जनाय दियो चाहें इन्हें साचो कियो, लियो भक्ति भाव जाके छायो गात है।
चल्यो चढ़ि सांढनी पै लई मधुपुरी आनी, करिकै सनान प्रान तजै सुनी वात है।
जै जै धुनि भई व्यापि गई चहुं ओर अहो भूपति चकोर जस चंद दिनरात है।[1]

मुंशी देवीप्रसाद ने लिखा है कि कतिपय लोगों ने वेलि के पृथ्वीराज रचित होने में सन्देह प्रकट किया अतएव इस विषय में निर्णय के लिए समकालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियों को आमंत्रित किया गया—(१) दुरसा (२) सांदूमाला (३) केसौदास गाडन (४) माधोदास दधवाड़िया। इनमें से दुरसा आढ़ा और सांदू माला ने पृथ्वीराज के विरोध में और केसौदास तथा माधोदास ने पृथ्वीराज के पक्ष में निर्णय दिया। पृथ्वीराज ने, कहते हैं कि दोनों विरोधी कवियों की निन्दा में एक और समर्थन करने वाले कवियों की प्रशंसा में दो दोहे लिखे हैं।[2] दोहे इस प्रकार हैं—

वाई वारे खालियाँ, कांई कही न जाय।
ऊदे मालो ऊपनों मेहे दुरसा थाय ॥१॥
केशो गोरखनाथ कवि, चेलो कियो चकार।
सिधरूपी रहतः शवद, गाडण गुणा भंडार ॥२॥

---

१. भक्तिरस-बोधिनी टीका र. का. संवत् १७६६ फागुन वदी १० मुद्रणान्तर्गत राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
२. राजस्थानी भाषा और साहित्य डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, पृ. १५६।

चूंडे चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ॥३॥

कहते हैं कि दुरसाजी आढ़ा भी बाद में पृथ्वीराज और वेलि के प्रशंसक हो गये। पृथ्वीराज तानसेन और बीरबल की मृत्यु पर कहते हैं—मुगलसम्राट अकबर ने यह दोहा कहा—

पीथल सौं मजलिस गई, तानसेन सो राग।
रीझ बोल हंस खेलबो, गयो बीरबल साथ ॥

कर्नल जेम्स टॉड ने पृथ्वीराज की प्रशंसा में लिखा है—"पृथ्वीराज अपने युग के वीर सामंतों में एक श्रेष्ठ वीर थे और पश्चिमी ट्रुबेडार राजकुमारों की भांति अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा किसी भी कार्य का पक्ष उन्नत कर सकते थे तथा स्वयं तलवार लेकर लड़ भी सकते थे।[1] साथ ही कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज की कविता में दस हजार घोड़ों का बल बताया है और श्री सूर्यकरण पारीक ने वेलि के पद्य संख्या ११३–१३७ को इस कथन के प्रमाण में प्रस्तुत किया।[2]

वेलि के प्रथम संपादक डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी ने लिखा है—"राठौड़ पृथ्वीराज, बीकानेर द्वारा रचित वेलि "क्रिसन रुकमणी री" राजस्थानी साहित्य-रूपी रत्नगर्भा खान के अत्यन्त देदीप्यमान रत्नों में एक श्रेष्ठ रत्न है।....डिंगल साहित्य की यह सर्वांग सम्पूर्णकृति है। काव्य-कला की दक्षता का एक विलक्षण नमूना है, जिसमें, आगरे के ताजमहल की तरह भाव की एकाग्रसहजता के साथ अनेकानेक काव्य-गुण-विस्तार का सुखद सम्मिश्रण हुआ है और जो रस एवं भाव का सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्य और काव्य के ब्रह्म आकार की निष्कलङ्क शुद्धता को जाज्वल्यमान स्वरूप में प्रदर्शित करता है"[3]

वेलि के काव्य सौष्ठव और धार्मिक माहात्म्य पर कवि स्वयं मुग्ध है। कवि ने वेलि का माहात्म्य विस्तार से वर्णित किया है।[4] कवि ने यहाँ आत्म-प्रशंसा नहीं कर भारतीय धार्मिक काव्यों की माहात्म्य-वर्णन परंपरा का अनुसरण मात्र किया

---

१. (क) एनलस एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान।
(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य, पं. मोतीलाल जी मेनारिया, पृ. १२१।
२. स्व. संपादित वेलि, भूमिका पृष्ठ १७।
३. स्व. संपादित वेलि श्री सूर्यकरणजी पारीक द्वारा अनुवादित भूमिका, पृ. ५०।
४. "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री" पृ. २७८, २९९।

है। कवि ने प्रारंभ में अपना असमर्थ्य[1] और अंत में विनय पूर्वक अपने दोष[2] भी स्वीकार किये हैं। डॉ. तेस्सीतोरी ने वेलि में कवि की आत्म-श्लाघा को स्वीकार करते हुए भी उसको प्रशंसनीय कहा है—"यह जानकर कि महाराज पृथ्वीराज का ग्रंथ सब प्रकार से अदूषित है, हम उनके आत्म-विश्वास के उत्साह को क्षन्तव्य समझते हैं। संक्षेप में और दूसरे आकार में यह वही आत्म-गौरव का भाव है जिसने मायकेल एंजेलो[3] नामक प्राचीन पाश्चात्य कलाविज्ञ को अपनी बनाई हुई संगमरमर की मोजीज[4] की मूर्ति के घुटने पर प्रहार कर आवेशपूर्वक यह कहने को प्रेरित किया, "बोल"[5]।

वेलि के संपादक और आलोचक ने इसके काव्य-सौष्ठव पर मुग्ध होकर मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। श्री सूर्यकरण पारीक ने लिखा है—"जिस प्रकार संस्कृत-साहित्य में महाकवि भवभूति ने वीर शृंगार और करुण, तीन पृथक-पृथक रसों और शैलियों में महावीर चरित्र, मालतीमाधव और उत्तर-राम-चरित जैसे उत्तम दृश्य-काव्यों की रचना करके अपनी प्रखर प्रतिमा का परिचय दिया और जिस प्रकार हिन्दी-साहित्य के वर्त्तमान काल की प्रगतियों के विधायक और आचार्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने साहित्य के सब अंगों को भरेपूरे करके साहित्य में अमर यश कमाया, उसी प्रकार महाराजा पृथ्वीराज ने भी पृथक्-पृथक् शैलियों, विषयों और रसों में काव्य-रचना करके राजस्थानी और हिन्दी साहित्य का मुख उज्ज्वल किया[6]।

डा. आनन्द प्रकाश जी दीक्षित का मत है— "वेलि की यह अपनी विशेषता है कि पुराने प्रसंगों पर भी कवि ने नवीन काव्य प्रासाद के निर्माण की अपूर्व प्रतिमा प्रदर्शित करती है। नये प्रसंगों और कल्पनाओं के साथ कवि ने पुरानी वस्तु को भी अपनी काव्य-प्रतिमा से भास्कर कर दिया है, उज्ज्वल बना दिया है। अस्तु, वेलि अपनी बाह्य तथा आन्तरिक छवि में ऐसी छविमय है कि उत्तर भाषाओं के श्रेष्ठ काव्यों के साथ इसकी भी गणना की जा सकती है।[7]

---

१. पद्य संख्या २, ६।

२. पद्य संख्या ३०१, ३०३।

३. एक इतालवी कलाकार (मार्च १४७५. फरवरी १५६४) एनसाइक्लोपीडिया ऑफ अमेरिका पृ. १४, १७।

४. विकोली (रोम) के सेनपेट्रो चर्च में स्थापित मूर्ति वही पृ. १६।

५. डॉ. तेस्सीतोरी की संपादित वेलि भूमिका से श्री सूर्यकरण पारीक द्वारा अनुवादित वेलिका हिन्दुस्तानी एकेडमी, संस्करण भूमिका, पृ. १००।

६. स्व. संपादित वेलि की भूमिका पृ. ४।

७. स्व. संपादित वेलि, भूमिका पृ. १७३।

पं० नरोत्तमदास जी स्वामी ने इस विषय में लिखा है—"कवि का भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वह उसको चाहे जिस प्रकार सहज ही मोड़ सकता है। शब्द मानों उसकी जिव्हा पर खेलते हैं जो आवश्यकता होते ही तुरन्त उपस्थित हो जाते हैं। शब्दालंकारों की इतनी प्रचुरता में भाषा के माधुर्य को और उसके स्वाभाविक प्रवाह को बनाये रखना पृथ्वीराज का ही काम था। हिन्दी के कवियों में, देव में यह गुण पाया जाता है पर पृथ्वीराज की और देव की कोई बराबरी नहीं। देव को अनेक स्थानों पर शब्दों को विकृत करना पड़ा है भाव की बलि भी अनेक बार देनी पड़ी है"।[1]

वस्तुतः कविवर पृथ्वीराज की अबोध भाव-धारा एवं काव्य-चातुर्य से प्रसारित 'वेलि' हमारे साहित्योद्यान में अद्वितीय है और भक्ति, शृंगार तथा वीरता के सफल समन्वय के साथ ही कला पक्ष का पूर्णरूपेण निर्वाह करते हुए भाव-सौन्दर्य की चरम परिणति ही इसकी प्रधान विशेषता है।

---

१. स्व. संपादित वेलि, भूमिका, पृ. ५६।

: ३ :

श्रीकृष्ण-चरित्र और श्रीकृष्ण सम्बन्धी राजस्थानी काव्यों के प्रेरणा-स्रोत

(१) श्रीकृष्ण-चरित्र—भगवान श्रीकृष्ण के अद्भुत् चरित्र में अनेक बाल-लीलाओं का चापल्य, रास-लीला की रसिकता, वंशी-वादन और ग्वाल नृत्य का कला-प्रेम, कुञ्जविहार का शृंगार, गोप-लीलाओं का माधुर्य, शकटासुर, वत्सासुर, अघासुर, धेनुक, प्रलम्बासु, वकासुर और कंस आदि को मारने की वीरता, श्रीमद्भागवद्-गीता का ज्ञान, महाभारत की नीतिज्ञता तथा राजसी ऐश्वर्य आदि लौकिक एवं अलौकिक तत्व हैं। अतएव अनेक कवि-कोविद और कलाकार युग-युगान्तर से प्रेरित होते रहे हैं। श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर होते हुए भी मानवी रूप धारण कर विभिन्न लीलाओं का प्रसार करने वाले हैं। आजीवन गृहस्थ रूप में रहते हुए भी योगेश्वर हैं और देवराज इन्द्र को पराजित करने में समर्थ होते हुए भी नीतिवश रणछोड़ हैं। श्रीकृष्ण की समकक्षता में कोई अन्य चरित्र नहीं प्रस्तुत किया जा सकता जिसमें सर्वांगीण प्रभाव से युक्त जैसी विविधता हो।

भारतीय साहित्यिक परंपरा के साथ ही संगीत, चित्रकला, नृत्य, शिल्प, स्थापत्य, वेशभूषा और साज सज्जा के साथ ही सम्पूर्ण भारतीय दर्शन एवं विचार-धारा पर श्रीकृष्ण का प्रभाव स्पष्टरूप से लक्षित होता है। इस प्रकार श्रीकृष्ण भारतीय जनता के लिये एक अजस्र प्रेरणा-स्रोत हैं और लोकरक्षक के साथ ही लोकरंजक रूप में प्रतिष्ठित हैं।

श्री कृष्ण-नाम का प्राचीनतम उल्लेख ऋगवेद में एक स्तोता ऋषि के रूप में प्राप्त होता है। यहाँ श्रीकृष्ण सोमपान के लिये अश्विनी-कुमारों का आह्वान करते हुए बताये गये हैं—

> आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥१॥
> इमं मे सोममाश्विनेर्म मे शृणु्तं हवम्। मध्व सोमस्य पीतये ॥२॥
> अयं वां कृष्णों अश्विना हवते वाजिनीवसु। मध्व सोमस्य पीतये ॥३॥

शृणु तं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा । मध्व सोमस्य पीतये ॥४॥
छदिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा । मध्व सोमस्य पीतये ॥५॥
गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना । मध्व सोमस्य पीतये ॥६॥
युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वंगे वृषण्वसू । मध्व सोमस्य पीतये ॥७॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेनायातमश्विना । मध्व सोमस्य पीतये ॥८॥
नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम् । मध्व सोमस्य पीतये ॥९॥[1]

अर्थात अश्विनिकुमारों ! मेरा आह्वान सुनकर मेरे यज्ञ में हर्षप्रद सोम के पास आओ ॥१॥ हे अश्विद्वय ! इस हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु मेरे स्तोत्र रूप आह्वान को सुनो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्न-धन्न से सम्पन्न हो । मैं कृष्ण ऋषि तुम्हें हर्ष प्रदायक सोम के लिये आहूत करता हूँ ॥३॥ हे अश्विद्वयं ! हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु मुझ कृष्ण का आह्वान सुनो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! मुझ विद्वान स्तोता कृष्ण ऋषि के लिये हर्ष प्रदायक सोम के निमित्त आओ ॥५॥ हे अश्विद्वय ! मुझ हविदाता के घर में हर्ष प्रदायक सोम को पीने हेतु आगमन करो ॥६॥ हे अश्विनि कुमारों ! हर्ष प्रदायक सोम के लिये दृढ़ भागों वाले रथ में घोड़े जोतो ॥७॥ हे अश्विद्वय ! तीन फलकों वाले त्रिकोण रथ पर हर्ष प्रदायक सोम पीने हेतु आओ ॥८॥ हे अश्विद्वयं ! मेरी स्तुति रूप वाणी के प्रति (आकृष्ट हो) सोम पीने हेतु शीघ्र ही आगमन करो ॥९॥

ऋग्वेद में ही श्री कृष्ण के पुत्र विश्वक् का भी उल्लेख है—

"अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्व काय ॥२३॥"[2]

अर्थात हे अश्विदेवों ! तुम्हारी रक्षा चाहने वाले श्रीकृष्ण ऋषि के पुत्र विश्वक् को तुमने पशु के समान खोए हुए पुत्र विष्णायू से मिला दिया ।

ऋग्वेद में कृष्ण को एक स्थान पर दैत्य बताते हुए इन्द्र द्वारा कृष्ण की प्रजा के विनाश का वर्णन हुआ है । यहां कृष्ण से इन्द्र की श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है—

प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरूत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥१॥[3]

---

१. ऋग्वेद, मण्डल ८वां, सूक्त ८५वां (मन्त्र १ से ९), गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।
२. ऋग्वेद-मण्डल १, सूक्त ११६, मन्त्र २३, गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।
३. ऋग्वेद-मण्डल १, सूक्त १०१, मन्त्र १, गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

अर्थात् हे मित्रो ! हम प्रसन्न हुए इन्द्र को निमित्त अन्न-युक्त स्तुतियां अर्पण करो, जिसने राजा "ऋजिश्वा" के साथ कृष्ण दैत्य की प्रजाओं का विनाश किया। हम उस वज्रधारी, वीर्यवान, इन्द्र का मरुतों सहित रक्षा के लिये आह्वान करते हैं।

कृष्ण और इन्द्र को एक दूसरे से बढ़कर बताने का विवाद कालान्तर में श्रीमद्भागवत्कार ने गोवर्द्धनपर्वत-धारण जैसे प्रसंगों में श्रीकृष्ण की महत्ता इन्द्र से बढ़ कर ही नहीं, सर्वोपरि रूप में प्रकट की।

देवकी पुत्र श्रीकृष्ण का नाम सर्वप्रथम छान्दोग्य उपनिषद् में प्राप्त होता है जहां घोर अङ्गिरस देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण को विशेष ज्ञान प्रदान करते हैं।[1] देवकी-पुत्र वासुदेव कृष्ण की महत्ता सर्वप्रथम महाभारत में प्रतिपादित होती है। महाभारत-युद्ध के लिये अर्जुन इन्द्र की अपेक्षा श्रीकृष्ण के सहयोग को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। अर्जुन श्रीकृष्ण को इन्द्र से अधिक पराक्रमी बताते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने भोज राजाओं को नष्ट किया, रुक्मिणी का हरण किया, नगजित के पुत्रों को पराजित किया, राजा पाण्ड्य का संहार किया, काशी नगरी का उद्धार किया, निषादराज एकलव्य का वध किया और उग्रसेन के पुत्र सुनाम को मारा। साथ ही अर्जुन कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में ही हयराज और अन्य राक्षसों को मारा, जलदेवता को परास्त किया तथा इन्द्र के नन्दनवन से सत्यभामा की प्रसन्नता हेतु पारिजात ले आये, आदि।[2]

जैनमतानुसार वासुदेव, बलदेव और प्रति-वासुदेव में से प्रत्येक की संख्या नौ है—यथा वासुदेव त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंप्रभ, पुरुषोत्तम, प्रगट, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण बलदेव-अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, सुमति, रामचन्द्र और बलभद्र, प्रतिवासुदेव-अश्वग्रीव, तारक, मेरुक, मधुयशा, निशुम्भ, बलय प्रह्लाद, रावण और जरासंध।[3]

श्री आरजी भाण्डारकर का मत है कि वासुदेव कृष्ण संभवतः सात्वत जाति के प्रसिद्ध राजकुमार थे और मृत्यु के उपरान्त इसी जाति द्वारा सर्वप्रथम पूज्य हुए। सात्वत जाति के अनुकरण में श्रीकृष्णोपासना का प्रचार अन्य जातियों में हुआ।[4] ग्रियर्सन, केनेडी और वेबर आदि विद्वानों ने अपना अनुमान प्रकट करते हुए लिखा

---

१. छान्दोग्य उपनिषद् ३/१७/४–६।

२. महाभारत, उद्योगपर्व।

३. कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र, त्रिषष्ठिशलाकापुरुष चरित्रम्।

४. ए रिपोर्ट ऑन सर्च फार संस्कृत मेन्युस्क्रिप्टस, १८८३–८४, बम्बई, १८८७, पृ. ७४।

है कि क्राइष्ट के बाल-चरित्र के अनुकरण में ही गोपाल कृष्ण का बाल-चरित्र निरूपित किया गया है।[1]

श्रीकृष्ण-चरित्र का पूर्ण विकास श्रीमद्भागवत् महापुराण में उपलब्ध होता है। श्रीमद्भागवत् में श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं को विशेष महत्व दिया गया है किन्तु प्रसंगानुसार श्रीकृष्ण के उत्तरकालीन ऐश्वर्यमय स्वरूप अर्थात् महाभारतकालीन चरित्रों को भी निरूपित किया गया है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत् में ऋग्वेद के स्तोता कृष्ण, सात्वतों के गोपाल कृष्ण और महाभारत के राजनीतिज्ञ कृष्ण, तीनों ही प्रतिनिधि रूपों का समन्वित चित्रण हुआ है। भागवत् के कृष्ण पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम हैं एवं परम उपास्य हैं। हमारी विभिन्न साहित्यिक विद्याओं पर श्रीमद्भागवत् के कृष्ण का ही प्रभाव है और यह महान् ग्रन्थ कवि-कोविदों, भक्तों तथा रसज्ञों का परम प्रिय और उपास्य बन गया है एवं धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के दाता-रूप में सुप्रतिष्ठित है। श्रीमद्भागवत् के विषय में लिखा गया है–"भागवत् ने श्रीकृष्ण-चरित्र के माधुर्य का लोगों को रसास्वादन करा कर कृष्णोपासना के वैष्णव पन्थ, द्राविड़, महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, उत्तर हिन्दुस्तान और बंगाल में स्थापित किये।[2]

श्रीकृष्णोपासन का पुरातात्विक दृष्टि से प्राचीनतम् प्रमाण राजस्थान में माध्यमिक (नागरी, चितौड़) के वासुदेव मन्दिर सम्बन्धी भग्नावशेषों में नारायण वाटिका से प्राप्त होता है।[3] मथुरा से प्राप्त एक शिके पर वसुदेव को नवजात् कृष्ण सहित यमुना पार करते हुए उत्कीर्ण किया गया है। यह मूर्तिपट्ट अनुमानतः प्रथम शताब्दी ईसवी का है।[4] मथुरा से प्राप्त अन्य एक शिलापट्ट पर कालियदमन का दृश्य प्रदर्शित किया गया है।[5] राजस्थान में मारवाड़ की प्राचीन राजधानी मण्डोर से एक शिलापट्ट उपलब्ध हुआ है जिस पर श्रीकृष्ण-लीला सम्बन्धी-गोवर्द्धन-धारण, माखन-चोरी, शकण्मञ्जन और कालियदमन के दृश्य बताये गये हैं।

---

१. डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, कृष्ण-भक्ति साहित्य, हिन्दी साहित्य भाग २, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग पृ. ३३५।

२. "मराठी वाङ्मय चा इतिहास, ले. ला. रा. पांगारकर प्रथम खण्ड पृष्ठ, ११०।

३. "यह प्राचीनतम वैष्णव मन्दिर कहा जा सकता है" डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल का "प्राचीन माध्यमिका की नारायण वाटिका" लेख शोध-पत्रिका उदयपुर, भाग ४ अंक ३।

४. इण्डियन आर्कियोलोजीकल सर्वे रिपोर्ट, वर्ष १६२५, २६।

५ पुरातत्व संग्रहालय मथुरा, में यह पट्ट सुरक्षित है।

इस शिला-पट्ट का समय ४थी-५वीं शताब्दी ई० माना गया है।[1] राजस्थान में सूरतगढ़ (बीकानेर) से मिट्टी की ऐसी पट्टिकाएं प्राप्त हुई हैं जिन पर गोवर्द्धन-धारण और दान-लीला के दृश्य बताये गये हैं। इसी प्रकार दक्षिण-भारत में बादामी गुफाओं में श्री कृष्ण-जन्म, पूतना-वध, शकट-भञ्जन, प्रलंब वध, धेनुक-वध, कंस-वध आदि के दृश्य प्रदर्शित किये गये हैं जिनका निर्माण-काल ६ठी—७वीं शताब्दी ई० है।[2]

विविध प्रकार के काव्यों में श्रीकृष्ण-चरित्र का निरूपण प्रथम शताब्दी ई. मे ही प्राप्त होने लगता है। उदाहरण-स्वरूप अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ई०) कृत संस्कृत काव्य "बुद्ध-चरित्र" और प्राकृत भाषाबद्ध हाल सातवाहन के काव्य "गाहा-सतसई" में श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण हुआ है। दक्षिण भारतीय आलवार सन्तों ने भी ५वीं से ९वीं शताब्दी पर्यन्त श्री कृष्ण-सम्बन्धी अनेक रचनाएं लिखी। सुप्रसिद्ध राजा यशोवर्मा (८वीं शताब्दी ई०) के सभा-कवि वाक्यतिराज ने अपने प्राकृत महाकाव्य "गउड़वहो" के प्रारंभ में श्रीकृष्ण का स्तुतिगान इस प्रकार किया है—

णह रेहा राहा—कारणाओ कलुणं हरन्तु वो सरसा।
वच्छ-त्थलम्मि कोत्थुह-किरणा अन्तीओ कण्हस्स॥[3]

हेमचन्द्राचार्य (१२वीं शताब्दी ई०) ने अपने सुप्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ में भी कतिपय पद्य राधा-कृष्ण सम्बन्धी उद्धृत किये हैं। जयदेव ने अपने प्रसिद्ध काव्य गीतगोविन्द में राधा-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं का सरस निरूपण किया जिसका प्रभाव कालान्तर में अनेक कवियों पर हुआ।

---

१. इण्डियन आर्कियोलोजीकल सर्वे रिपोर्ट, वर्ष १९०५, ९।
२. आर्कियालोजीकल मेमोयर्स, वर्ष १९२८, २९।
३. गउड़वहो, मंगलाचरण, २२।

: ४ :

सांयाजी झूला कृत "रुखमणी-हरण"

भक्त कवि सायांजी भूला की काव्यात्मक रचनाएं मुख्यतः दो हैं—नागदमण और रुखमणी-हरण । इनकी कतिपय स्फुट पद्य-रचनायें भी बताई जाती हैं । यथा—

अपणा हुआ और, मनरा मेलू माढ़वा ।
ओ दुख आरो पोर, चुभै पल-पल सांयोड़ा ।।१।।
हिवाड़ा वाली हूक, कै कांना किण नै कहां ।
कालै म्हारी कूक, कहै न सुणी सांयोड़ा ।।२।।[1]

नागदमण और रुखमणी-हरण दोनों ही काव्य कृष्णाख्यान पर आधारित हैं । नागदमण में श्रीकृष्ण की बाल-लीला कालीय-दमन का और रुखमणी हरण में प्रसङ्गानुसार समस्त बाल-लीलाओं के संक्षिप्त वर्णन के साथ रुक्मिणी-हरण प्रसंङ्ग का काव्यात्मक निरूपण हुआ है । नागदमण और रुखमणी-हरण के विषय में आलोचकों के मत परस्पर विरोधी हैं । अधिकांश आलोचकों ने रुखमणी-हरण से नागदमण को श्रेष्ठ माना है—

"'रुषमणी-हरण' एक साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है । सायांजी का दूसरा ग्रंथ 'नागदमण' है । ''''ग्रंथ में विषयों के वर्णन की जो शैली कवि ने अपनाई है, उससे इसकी विशेषता अधिक बढ़ गई है । कवि ने कृष्ण की बाल-लीला का वर्णन,

---

१. अपने मन के मित्र और प्रेमी पराये हो गये । सांयाजी कहते हैं कि यह दुःख पल-पल आर-पार चुभता है । हे कृष्ण-तुम ही बताओ, अपने हृदय का दुख किसको कहा जावे ? सांयाजी कहते हैं कि हे श्याम ! मेरी दुख-भरी पुकार कष्टदायक है जो न कही जा सकती है, न सुनी जा सकती है ।

श्री हनुवंतसिंह देवड़ा, संयुक्त राजस्थान, सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय, जयपुर, अगस्त १९५० ।

नागणी के साथ संवाद तथा कालियमर्दन का सजीव चित्रण उपस्थित किया है। ग्रंथ की भाषा प्रसादगुणयुक्त तो है ही, तथापि विषयानुरूप वात्सल्य, माधुर्य, ओज, भय, विस्मय आदि भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति के कारण उसमें विशेष रस-प्रवाह हो गया है।[१]

रुखमणी-हरण में काव्यत्व का कहीं पता भी नहीं है। यह एक बहुत साधारण श्रेणी का वर्णनात्मक ग्रन्थ है। रुखमणी-हरण की अपेक्षा सांयाजी का नाग-दमण पर्याप्त सजीव और पुष्टता लिये हुए है। ··· इसमें कृष्ण की किशोरावस्था, यशोदा के वात्सल्य, गोपियों के प्रेम और कृष्ण-कालिय युद्ध का चित्रोपम वर्णन है। डिंगल की प्रासादिकता और ओज का यह ग्रन्थ एक अच्छा नमूना है।[२]

"नागदमण का विशेष महत्व उसके वर्णनों और संवादों के कारण है। ये बहुत ही पुष्ट और सजीव बन पड़े हैं। वर्णन ऐसे हैं कि जिनसे सारा का सारा दृश्य अपने आस-पास के वातावरण के साथ साकार हो जाता है। इसी प्रकार संवादों में, विशेषतया नागणी और कृष्ण के संवादों में माधुर्य, वात्सल्य, आश्चर्य, भय, उत्साह आदि भावों का एक साथ सुन्दर सामञ्जस्य मिलता है। वे बड़े फबते हुए और उपयुक्त हैं। सरल वर्णन और सुन्दर सम्वाद एक-दूसरे के साथ गुंथ कर पाठक की उत्कंठा बढ़ाते हैं और जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। ····रुपमणी-हरण वीर-रसपूर्ण एक वर्णनात्मक काव्य है, ····गौण रूप से वीभत्स रस का वर्णन भी मिलता है। इसमें रसानुकूल शब्द-योजना और चित्रमय वर्णन स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। 'नागदमण' की भांति 'हरण' में भी संवाद और विविध वर्णनों के प्रसंग प्रमुख हैं।[३]

"यह (रुक्मिणी हरण) और वेलि दोनों ग्रंथ एक साथ बादशाह अकबर को निरीक्षणार्थ भेज गये। बादशाह ने पहले वेलि को सुन कर हरण को सुना। अन्त में हरण की रचना को श्रेष्ठतर निर्णीत करके श्लेष और व्यंग्य में पृथ्वीराज से कहा 'पृथ्वीराज तुम्हारी वेलि को चारण बाबा की हरणियां चर गई।"[४]

---

१. श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी शब्दकोष, भाग १, राजस्थानी शोध-संस्थान, जोधपुर, भूमिका पृ. सं. १४४।

२. श्री मोतीलालजी मेनारिया, राजस्थानी भाषा और साहित्य, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, पृ. सं. १३३।

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ. हीरालालजी माहेश्वरी, आधुनिक पुस्तक-भवन, ३०, ३१ कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता ७, पृ. सं. १७८, १८२।

४. वेलि क्रिसन रुक्मिणी रा, सम्पा० डॉ. आनन्द प्रकाशजी दीक्षित, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, भूमिका पृ. सं. ३५।

इस प्रकार "रुखमणी-हरण" एक ओर तो अकबर सम्बन्धी प्रवाद के अनुसार महाराज पृथ्वीराज कृत "वेलि क्रिसन रुक्मिणी री" से भी श्रेष्ठ कहा गया और दूसरी ओर विद्वानों ने इसे एक सामान्य वर्णनात्मक कृति माना। हमारे ग्रन्थ-भंडारों में सायांजी कृत "रुखमणी-हरण" की प्रतियां बहुत कम मिलती हैं इसलिये आलोचकों की धारणाएं इस विषय में स्पष्ट नहीं हो सकीं। नागदमण" और रुक्मिणी-हरण की रचना में कवि को समान रूप में सफलता मिली है। नागदमण की अनेक प्रतियां हमारे ग्रन्थ-भण्डारों में मिलती हैं और इसका प्रकाशन भी बहुत पहले हो चुका है।[1] सायांजी कृत रुखमणी-हरण का प्रकाशन भी प्राप्य पाठान्तरों सहित प्रस्तुत लेखक के सम्पादन में हुआ है।[2]

'क' कथानक-समीक्षा

कवि ने प्रारम्भ में मंगलाचरण देते हुए ही अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय दे दिया है—

भल कव वहण भले गुण भरया, उकत विसेषे पार उतरया।
काळाई वाला जेणें करया, त्राये आप आपरे तरया॥१॥
सबद-जहाज वहण टकसाली, तर तर सकव गया तण ताली।
महंण संसार तरण वनमाली, जोडिस हूँ एक तुंबा जाली॥२॥
दरीया ऊपर पत्थर डारे, ऊपर पत्थर सेन उतारे।
समर क्रसन तणे मत सारे तुंबे बेठा केम न तारे॥३॥

कवि ने अपने काव्य-रूपक को भवसागर तैरने हेतु तुंबा-जाली कहा है। कवि भक्त के नाते ईश्वर से प्रार्थना करता है कि अन्य कवियों ने तो शब्दरूपी जहाजों का आश्रय लेकर भवसागर पार किया किंतु उसने तो एक तुंबा-जाली का ही निर्माण किया है। ईश्वर समुद्र में डाले गये पत्थरों को तैराने और उस पर से सेना पार उतारने में भी समर्थ हैं तो तुंबे पर बेठे हुए को वह कैसे नहीं तारेगा? इस प्रकार कवि ने प्रारम्भ में ही अपनी विनम्रता, उक्ति वैचित्र्य, मार्मिक अभिव्यंजना एवं काव्यगत कौशल का परिचय देते हुए सच्चे भक्त के नाते ईश्वर के प्रति अपना अधिकार प्रकट करते हुए विश्वासपूर्वक लिखा है—"तुंबे बेठां केम न तारे।"[3] तदुपरान्त श्रीकृष्ण-चरित्र का वर्णन है। कवि ने राजा भीष्मक और रुक्मैया के संवाद में श्रीकृष्ण के प्रति अनूठे भाव व्यक्त किये हैं। कवि ने अपनी ओर से श्रीकृष्ण को उपालम्भ न देते हुए

---

१. सम्पादक, श्री हमीरदानजी मोतीसर, पालणपुर, सन् १९३३ ई०।
२. प्रका. राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथांक ७४।
३. पद्य संख्या १, ३।

रुक्मैया द्वारा "खरी-खोटी" सुनाई है। इस प्रकार कवि ने अपनी भक्ति की एक विचित्रता प्रकट की है।[1]

वेलि-कर्ता महाराज पृथ्वीराज ने उक्त-प्रसंग के स्थान पर रुक्मिणी के नख-शिख-वर्णन और वय:संधि-वर्णन की आयोजना की है। पृथ्वीराज और सायांजी की काव्य-रचना में उद्देश्य-भिन्नता स्पष्ट ही दृष्टिगोचर होती है। वेलिकार का ध्यान श्रृंगार की ओर है किंतु सायांजी का लक्ष्य श्रीकृष्ण-चरित्र-निरूपण और वीर-रस की अभिव्यक्ति है। पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में निहित श्रृंगार की ओर स्पष्ट ही संकेत किया है—

सुकदेव व्यास जैदेव सारिखा,
सुकवि अनेक ते एक सन्थ।
त्री-वरणण पहिलो कीजै तिणि,
गूंथियै जेणि सिंगार-ग्रंथ ॥८॥

सायांजी ने रुक्मैया के शब्दों में श्रीकृष्ण-लीला का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की आलोचना भी की है—

लपण वत्रीस तेत्रीसमो ए लपण।
वरा घर चोरउ पसू-नवेनत घण।
प्रथम दही दूध मांपण तणी पत गली।
आंगली आपतां वांह एणै गली॥
तात ने मात वीवाह पड-मड टली।
मेलयां धणां धरवास आया मली।
सांझ सूर उगमण तात महतारीया।
पुत्र सोझयो मले घाट पणहारीया॥[2]

कवि को इस विषय में प्रसंग भी सर्वथा अनुकूल प्राप्त हुआ है क्योंकि रुक्मैया श्रीकृष्ण का कृष्ण-पक्ष बताकर उनसे रुक्मिणी का विवाह नहीं करने के लिए अपने पिता को सहमत करना चाहता है और पिता श्रीकृष्ण की प्रशंसा करते हुए रुक्मैया को समझाना चाहते हैं।

कविवर सायांजी ने प्रस्तुत काव्य में श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का निरूपण किया है। यथा—

---

१. पद्य संख्या, ५–५१।
२. पद्य संख्या ७, ८।

पूतना वध—

साच मानो नहीं साप मर सांवता।
पूतना काल कंस खाल दापा पता ॥[1]

चीर-हरण लीला—

घाट जमुना तणे दीह धोले घणा।
ताकतो पागरण नहण नारी तणा ॥
कदम डालें चढी चीर भूंटे कसन।
नीर में कर्गरे नारि बेठी नगन ॥[2]

दान लीला—

वांठ लेता पछो आव तण हीज वरस।
मांडीया फंद महीयारीयां दांण मस ॥
रोक महीयारीयां सांझ सूधा रहै।
लषण एरां तणा ओहीज वातां लहै ॥[3]

ओंखल बन्धन—

वालपण ऊषले एण बंधावीओ।
एहवो सगो कदे आंपणे आवीओ ॥
मूंढ हण ऊषले गूढ होय मोडीया।
चोकरा आय कुमेर रा छोडीया ॥[4]

नागदमन—

जलनिध अंजली अगथ विण कण कीयें।
नाग काली कुणें कांन विण नाथीयें ॥[5]

गोवर्द्धन धारण—

सुष थयो पुत्र अनकोट संभारियो।
एवडो इंद्रचो मांण ऊतारीओ ॥
एकण हाथ परबत ऊधारीयो।
वृज उवारीओ केम बीसारीओ ॥[6]

श्रीकृष्ण के परब्रह्म विष्णु-रूप की ओर संकेत करते हुए कवि ने सागर-मंथन ओर लक्ष्मीवरण का भी उल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने राम और कृष्ण की एकता भी युग के अनुकूल अनूठे रूप में प्रतिपादित की है—

---

१. पद्य संख्या ६।
२. पद्य संख्या ८।
३. पद्य संख्या १०।
४. पद्य संख्या १७।
५. पद्य संख्या १६।
६. पद्य संख्या ३६।

रोल गढ लंक डग हीज आंणी रमा।
सीस रांमण तणा कीध आंगण समा॥

राजा भीष्मक के शब्दों में कवि ने तीनों लोकों को पवित्र करने वाली गंगा और नर्बदा का अवतरण भी श्रीकृष्ण के चरणों से बताया है—

कुंवर त्रीलोक जे गंग पावन करे।
नरबुदा एहीजरा चरण सूं नीसरे॥[१]

रुक्मैया राजा भीष्मक की बातों की ओर ध्यान नहीं देता हुआ रुक्मिणी के विवाह हेतु शिशुपाल को लग्नपत्रिका प्रेषित कर देता है।[२] आगे कवि ने शिशुपाल द्वारा विवाह हेतु प्रस्थान करते समय और मार्ग के अपशकुनों का वर्णन किया है[३] जिससे प्रकट है कि कवि को शकुनशास्त्र का विशेष ज्ञान था।

तदुपरांत कवि ने रुक्मिणी की विपन्नावस्था बताते हुए रुक्मिणी की ओर से ब्राह्मण द्वारा श्रीकृष्ण को पत्रिका भेजने का वर्णन किया है।[४] ब्राह्मण द्वारिका जाता हुआ रास्ते में सो जाता है और जागने पर अपने आपको द्वारिका में पाता है तो उसकी प्रसन्नता का पार नहीं रहता। ब्राह्मण तुरन्त ही श्रीकृष्ण से मिलता है—

हरषीयो रिप मन मांह आणद हुओ।
जीव जांमण-मरण कीध जोपम जुओ॥
देव नें देवदेवाधि दरसण दीयो।
पेहल परणांम कर कुशलपण पूछीयो॥[५]

इस प्रसंग में देव अर्थात् ब्राह्मण को देवाधिदेव अर्थात् श्रीकृष्ण द्वारा दर्शन देने का उक्ति सौन्दर्य दृष्टव्य है।

आगे कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का विनती-पत्र प्रस्तुत किया है जिसमें श्रीकृष्ण के परमब्रह्म-स्वरूप का वर्णन भी है—

कंत श्रीनारयण ते दन लषमी कही।
राज रघुनाथ ते सती सीता सही॥
वेद न लहे परसूं परस नही पारणी।
राज श्रीकृष्ण तो आज हूं रुषमणी॥[६]

---

१. पद्य संख्या ४६।
२. छंद संख्या ५२।
३. छंद संख्या ५३ से ६२।
४. छंद संख्या ६३ से ६६।
५. पद्य संख्या ६६।
६. पद्य संख्या ७४।

श्रीकृष्ण रुक्मिणी के पत्र में 'निमप रो विलंब रो नाथ अवसर नथी'' पढ़ते ही रथ मंगवाकर कुन्दनपुर की ओर चल दिये।[१] ब्राह्मण का श्रीकृष्ण सहित आगमन जानकर रुक्मिणी प्रसन्न हुई। रुक्मिणी ने लक्ष्मी के रूप में ब्राह्मण के आगे नमन किया तो ब्राह्मण को किस बात की कमी हो सकती थी ?[२]

बलदेव को श्रीकृष्ण के जाने की सूचना मिली तो वे पूर्ण सैनिक तैयारी के साथ श्रीकृष्ण की सहायता हेतु पहुंचे। थोड़े समय के लिए भी अलग नहीं होने वाले हलधर और गिरिधर कुन्दनपुर में पुनः मिले तथा इनका आगमन सुनकर राजा भीष्मक को प्रसन्नता हुई।[३]

आगे कवि ने श्रीकृष्ण के कुन्दनपुर में स्वागत-सत्कार और विभिन्न पक्षों की चितवृत्तियों का वर्णन किया है। कुन्दनपुर में एक रुकमैया के अतिरिक्त सभी श्रीकृष्ण के आगमन से प्रसन्न हुए और उनके दर्शन हेतु लालायित हुए—

विसनु आईयो मंगल घरा घर वरतीया।
रुकमीया हेक वण सहू रलियात थीया॥
दीनबन्धु तणा सेन दरसावीयां।
चोसरी प्रज मेडे चडे चाहीया॥[४]

श्रीकृष्ण के स्वागत में सज्जनों के मुख ''राजीव जिम सरद रत'' की भांति विकसित हो गये और कृष्ण:रुक्मिणी-परिणय की कामना हेतु अपने सुकृत अर्पित करने लगे।[५] राजा भीष्मक ने श्रीकृष्ण को भक्तिपूर्वक सात-खण्डे महल में ठहराया[६] जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

आव तर कलप वृष छांह छांण आंगणे।
केहल कसतूरीयां महल मांणक कणै॥
षंभ परवालीया मालीया सात षण।
देव डेरा दीया तेथ कालीदमण॥६८॥

इस अवसर पर शिशुपाल भी अपने सहयोगी राजाओं और सैनिकों सहित रुक्मिणी से विवाह करने हेतु पहुंच जाता है। ''कन्या हेक नै वर दोय चडीया कडे।'' के कारण दोनों पक्षों की ओर से युद्ध की तैयारी होती है क्योंकि अब युद्ध अवश्यंभावी हो चुका था।

---

१. छंद संख्या ७७।
२. छंद संख्या ७८—८०।
३. छंद संख्या ८१ से ९०।
४. पद्य संख्या ९१।
५. पद्य संख्या ९३।
६. पद्य संख्या ९८।

रुक्मिणी अपनी सहेलियों के साथ अम्बिका-पूजन के लिए जाती है तो शिशुपाल और जरासन्ध पूर्ण सावधानी से रुक्मिणी की रत्न के समान रक्षा का प्रबन्ध करते हैं—

जंपे जरसिंध रा घात जो सेंवणी।
रापीयें रतन जिम जतन कर रुपमणी ॥[1]

शिशुपाल के सैनिकों ने सुरक्षा-हेतु रुक्मिणी और उसकी सहेलियों सहित मन्दिर के चारों ओर घेरा डाल दिया—

वींट य आव चक्रवेध चहूण वले।
देहरा सहित सिसपाल वाले दले॥
गैंदलां पैंदलां हैंदलां गूंथणी।
चालतो कोट चौफेर लीधो चुणी ॥[2]

रुक्मिणी ने ज्योंही अम्बिका का पूजन कर श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा की तो आकाशमार्ग से श्रीकृष्ण ने पहुंच कर रुक्मिणी को अपने रथ में बैठा लिया और समस्त सैनिक मूर्छित हो गये। इस विषय में कवि ने लिखा है—

अंबिका परसती पंथ अवलोकती।
चार वर मालती च्यार दिस चाहती॥
मोह बांण समा श्रोह मुरछावीया।
गत मागी मडां अंत में श्रवीया॥
भेटतां अंबिका हुओ मन-मावीयो।
अंतरीप पेडि रथ महमहण आवियो॥
दुलहणी आलि बैसारतो देपीयो।
एवडो सेन पण चित्र आलेपीयां॥[3]

रुपमणी-हरण का एक प्रमुख अंग युद्धवर्णन है। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर ज्योंही शंख-नाद किया, समस्त सैनिक लड़ने हेतु उद्यत हो गये।[4]

कविवर सायांजी भक्त होने के साथ ही एक कुशल योद्धा भी थे इसलिए रुपमणी-हरण में मध्यकालीन भारतीय युद्ध-पद्धति का विस्तृत एवं यथार्थ वर्णन उपलब्ध होता है।[5] युद्धवर्णन प्रस्तुत काव्य का एक प्रमुख और महत्वपूर्ण भाग है जिससे काव्य वीर-रस प्रधान हो गया है। इस युद्धवर्णन के अन्तर्गत शत्रु-सेना के

---

१. पद्य संख्या १०६। २. पद्य संख्या ११७।
३. पद्य संख्या ११८, ११९। ४. छंद संख्या १२०, १२२।
५. छंद संख्या १२३—१६४।

युद्ध-प्रयाण का, विभिन्न प्रकार के मध्यकालीन आयुधों का, विविध वाहनों का, वीरों के सिंहनाद का, कायरों की भाग-दौड़ और घायलों की कराहट का हृदय-स्पर्शी चित्रण है।

सेना-प्रयाण से आकाश-मंडल धूल से अच्छादित हो गया जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

चक्कने चक्कवी पूर रयणी चिया।
गेहणी छोड़ भरथार दूरें गिया॥
मेंण पुड ऊपड़ी पेह पेहां मली।
आपरां वछांने नां उलपें अनली॥[1]

युद्ध सम्बन्धी वाद्यों और आयुधों की गर्जना का प्रभाव भी कवि ने इन शब्दों में व्यक्त किया है[2]—

तड डवर धुतरणा रणतूर भेरू त्रहे।
साल लेर वदां पांच सबदां वहे॥
बेलरी नीध्रसण ठीकली रा ठोआ।
साल कीया सबद सुंण थाट आंगण सोहा॥१५०॥
गाज त्रंबाल पड रोल गेंणाइयां।
सालुले सिंधुयें राग सरणाइयां॥
कूद गया कायरां वाजती काहली।
वीर आकासमां सूरमां वलकुली॥१५१॥

× × ×

धरण पुड ऊपडी देष मातो धमस।
आतस बाजीयां माझीयां उकरस॥
वहें जत्रबांण चन्द्रबांण छूटें वला।
काट मूडंड कोडंड कर तंडला॥१५४॥

युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा किये गये शस्त्र-प्रहार और उसके प्रभाव का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है—

मोषीया बांण संधाण मधुसूदने।
विसनर धडहडयो जांण पडे वने॥

---

१. पद्य संख्या १३०।
२. पद्य संख्या १५०, १५१।

झाझा नांमी चकर सीस लागा झडण ।
पतर भर जोगणी रगत लागी पीयण ॥१७३॥
डहडहे डाक होय हाक होकारवण ।
घाय घूमें घुलें मडे भाजण घडण ॥
विसनरा चक्र पडे सर वेरीयां ।
दडदडे झाल पप कोरणों कोरीयां ॥१७४॥

श्रीकृष्ण और बलदेव के सामने युद्ध में शिशुपाल, जरासन्ध और रुक्मैया तीनों ही पराजित हुए। श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को बांध लिया किंतु फिर रुक्मिणी के निवेदन पर उसको मारने का विचार छोड़ दिया। इस विषय में कवि ने लिखा है—

भई भगवांनरे वात मनभावती ।
जोवीयो श्रीकिसन सांमुहो जूवती ॥
ताप छोडो प्रभू वीर वहीवा तणो ।
घरा घरा लोक उपहास करसी घणो ॥१८३॥
तिका आ रुकमणी एम कहसी श्रीया ।
काल कूल वंध मारावतो छाकीया ॥
पंथ पत-मात पीहर तणो पालसी ।
सासरे मेंहणा सोकरा सालसी ॥१८४॥

रुक्मिणी के ऐसे वचनों का श्रवण कर श्रीकृष्ण ने रुक्मैया को उसकी आधी मूंछ और मस्तक मुण्डित करवा कर मुक्त कर दिया। तदुपरांत कवि ने युद्ध-स्थल में प्रवाहित होने वाली लोहू की धाराओं, हाथियों, घोड़ों और योद्धाओं की कटी हुई लोथों, पलचरों की प्रसन्नता आदि का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण की विजय का उल्लेख इस प्रकार किया है—

नरदले असपती गजपती नरपती ।
दुलहणी लावीयो जीप वारामती ॥
किसन कारज वने पंथ हेकण कीया ।
सेसचो भार उतार आंणी सीया ॥[1]

यहां दृष्टव्य है कि कवि ने श्रीकृष्ण को पूर्णब्रह्म परमेश्वर और दुष्टों का विनाश कर पृथ्वी का भार उतारने वाला लिखा है एवं रुक्मिणी को सीता अथवा लक्ष्मी कहा है।

---

१. पद्य संख्या १९४।

कवि ने आगे श्रीकृष्ण के रुक्मिणी सहित द्वारिका लौटने, द्वारिका की सजावट और जनता द्वारा किये गये उनके स्वागत का चित्रण किया है—

गाजीया वाजत रन नगारा गडगडी ।
चाह वीवाह वहू प्रज ओटे चडी ॥
चंद्रचे चंद्रचे चाहीया चौहटा ।
घूघटी अंवरे जांण बाराह घटा ॥
कांगरे कांगरे मोर कंगावीया ।
पाट पाटंवरें हाट पेहरावीया ॥
मालीए मालीए हीर हाटक मणी ।
जालीए जालीए नगर री जोपणी ॥[1]

तदुपरांत कवि ने ज्योतिषियों द्वारा श्रीकृष्ण-रुक्मिणी के विवाह की लग्न-वेला निश्चित करने, श्रीकृष्ण के वस्त्राभूषणों द्वारा सज्जित होने और विधिपूर्वक विवाह का वर्णन किया है।[2] कवि ने विवाह-वर्णन के पश्चात् श्रीकृष्ण-रुक्मिणी की रति-क्रीड़ा के विषय में यही लिखकर मौन धारण कर लिया है—

रुषमणी किसन रे रंग पूगी रयण ।
रंग-रस कहत जो सेस देतो रसण ॥[3]

कवि ने काव्य को पूर्ण करते समय श्रीकृष्ण की राज्य-सभा का वर्णन करते हुए उनकी महानता, उदारता, कलाप्रियता, न्याय-भावना और गुण-ग्राहकता की ओर भी संकेत किया है—

सूंण हद हेक नारद मल सारदा ।
नाद अलिहाद पेहलाद सो नारदा ॥
गंधर्वा चारण भाट मोटा गुणी ।
चोज रूपक री राग री चाहणी ॥

× × ×

तेथ भेला चरे सिंह सूरही तटा ।
सींह ने बाकरी मीनडी सूवटा ।
तेथ वरणा वरण सरस वसूदेव तण ।
मांडीयो त्याग द्वारामती महमहण ॥[4]

कवि ने मंगल-कामना करते हुए काव्य को पूर्ण किया है।

---

१. पद्य सं. १६६, १६७।
२. छंद संख्या २०३–२१४।
३. पद्य संख्या २१५।
४. पद्य संख्या २१८–२२०।

विभाव, अनुभाव और सञ्चारी भावों के संयोग से होती है—विभावानुभावसंचारी-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः"।[१] "हरण" में वीर रस का प्राधान्य है। इसके कर्त्ता एक चारण कवि थे जिससे काव्य में वीर रस होना सर्वथा उचित है।

वीर रस की निष्पत्ति, युद्ध, दया, धर्म और दानादि कार्यों में अत्यधिक उत्साह होने पर मानी गई है। वीर रस के आलम्बन नायक, शत्रु, याचक और दीन हैं, उद्दीपन विभाव, शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अहंकार, याचक की दीन दशादि; अनुभाव–स्थैर्य; रोमाञ्च, सत्कार आदि, सञ्चारी भाव-गर्व, धृति, तर्क, स्मृति, हर्ष, दया, आवेगादि और इसका स्थायीभाव उत्साह है। "हरण" का वीर रस वास्तव में युद्ध विषयक है जिसके आलम्बन शिशुपाल, रुक्मैया और जरासिन्धादि शत्रु, उद्दीपन, इन शत्रुओं की शक्ति, अहंकार और ललकार, अनुभाव श्रीकृष्ण बलदेवादि की युद्ध में स्थिरता और रोमाञ्चादि तथा सञ्चारी भाव युद्ध में विभिन्न योद्धाओं का गर्व, धृति, तर्क और आवेग आदि हैं जिनका निरूपण काव्य में यथा-स्थान सफलता पूर्वक हुआ है।

शान्त, शृंगार और वीभत्सादि रसों का भी कतिपय स्थलों में वर्णन हुआ है। हरण के कर्त्ता एक सिद्ध महात्मा माने गये हैं जिनकी दास्य भक्ति का निरूपण मुख्यतः काव्य के प्रारंभ और अन्त में हुआ है। काव्य के मंगलाचरण-कृष्ण चरित्र-निरूपण और उपसंहार में भक्ति एवं शान्त रस के उत्तम उदाहरण हैं। "हरण" काव्य में श्रीकृष्ण और रुक्मिणी के विवाह का वर्णन है इसलिये शृंगार-वर्णन का कवि के लिये पर्याप्त अवसर था किन्तु कवि ने रुक्मिणी के बाल-रूप वर्णन, वयः-सन्धि वर्णन, शृंगार वर्णन, संयोग, षट्ऋतु वर्णन को छोड़ दिया है। सम्बन्धित कथानक में शृंगार-रस के अनुकूल अनेक तत्व उपलब्ध हैं किन्तु कवि ने इनकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखा है। संयोग शृंगार के वर्णन में कवि ने यह लिख कर ही सन्तोष प्रकट किया है—

कवण कव सकत रसण हेकण कहे।
लेहणो गेहणो तास लषमी लहे॥
रुषमणी किसनरे रंग पूणी रयण।
रंग-रस कहत जो सेस देतो रसण॥[२]

महाकवि पृथ्वीराज राठौड़ ने इसी कथानक के आधार पर स्वरचित "श्रीक्रिसन रुकमणी री वेलि" में मर्यादित शृंगार का कलात्मक और चमत्कारिक

१. नाट्यशास्त्र १, ३२।
२. छंद संख्या २१।

निरूपण किया है। वेलि में रुक्मिणी के बालरूप, वयःसन्धि, सोलह शृंगार, पुरस्रांत वर्णनों के साथ ही षट्ऋतु काव्य-कला की दृष्टि से पूर्ण रोचक है। इसके विपरीत, युद्ध-वर्णन में जैसी पूर्णता और विस्तार "हरण" में है, उसका "वेलि" में अभाव है। वेलि में शृंगार, शान्त और वीर रसों की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है तो हरण में शान्त और वीर-रस का सफल समन्वय हुआ है।

शान्त रस के अन्तर्गत "हरण" में कवि का भक्ति-स्वरूप निराला ही है, क्योंकि इसमें दास्य-भक्ति जनित विनम्रता, बालरूप-चित्रण और माधुर्य के साथ ही कृष्ण की कटु आलोचना का भी समावेश हुआ है।

'घ' अलंकार और छन्द

"रुकमणी-हरण" के कर्त्ता सायांजी में कवित्वोचित संस्कार मूलतः वर्तमान थे। परिणामस्वरूप काव्य का एक भी छंद ऐसा नहीं जो किसी न किसी रूप में अलंकृत नहीं हुआ हो। अनुप्रास, श्लेष, यमक और रूपकादि सामान्य प्रचलित अलंकार तो इस काव्य में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते ही हैं किन्तु मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में प्रचलित "वैणसगाई" अलंकार का निर्वाह प्रायः समस्त छन्दों में हुआ है। मध्यकालीन राजस्थानी कवियों की ऐसी मान्यता रही कि "वैणसगाई" का निर्वाह होने पर काव्य में किसी प्रकार का दोष नहीं रहता—

आवै इण भाषा अमल, वैण सगाई वेस।
दग्ध अगण वद दुगणरो, लागै नहं लवलेस॥

पारस्परिक वैर अथवा दोष मिटाने हेतु परिवारों में विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर लिये जाते थे अर्थात् वाग्दान-सम्बन्ध स्थापित किया जाता था। "वयण-सगाई" का अर्थ वाग्दान सम्बन्ध और वर्ण-सम्बन्ध दोनों से ही है। इस विषय में लिखा गया है—

वयण-सगाई वेस, मिल्यां सांच दोषण मिटै।
किणयक समै कवेस, थपियो सगपण ऊपरै॥
खून कियां जाणै खलक, हाड-वैर जो होय।
वेण-सगाई वैण री, कळपत रहै न कोय॥

—रघुनाथ रूपक गीतांरो।

इस प्रकार मध्यकालीन राजस्थानी काव्य में वयण-सगाई अलंकार का निर्वाह छन्द के प्रत्येक चरण में अनिवार्य हो गया था। इसके अभाव में काव्य-कला पूर्ण बहुत से छन्द स्वयं कर्त्ताओं द्वारा ही नष्ट कर दिये गये। सर्व प्रथम राजस्थानी भाषा के समर्थ कवि महाकवि सूर्यमल ने "वयण-सगाई" के बन्धनों को शिथिल करते हुए लिखा—

वैण-सगाई वालियाँ, पेपीजे रस-पोस।
वीर हुतासण बोल में, दीसै हेक न दोस॥

—वीर सतसई।

सूर्यमल का मत था कि वयण-सगाई के प्रयोग में रस का पोषण देखा जाता है किन्तु वीररस पूर्ण काव्य में कोई दोष नहीं होता।

वयण सगाई तीन प्रकार की मानी गई है—

वरण-मित्त जू वरण विध, कवियण तीन कहंत।
आद अधिक, सममध अवर, न्यून अंक सो अंत॥

उत्तम, माध्यम और अधम तीन प्रकारों में उत्तम वैण-सगाई के तीन उपभेद हैं जिनके उदाहरण रुक्मिणी-हरण में इस प्रकार हैं—

१. **आदि मेल** – चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अन्तिम शब्द के आदि में हो। यथा—

भल भला राय हर राय कुंअरी भली। २.२[1]
वात वीमाहरी सोछ कीजे वली। ५.३

२. **मध्य मेल**—चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अन्तिम शब्द के मध्य में हो—

वमल पत सात कुल छात जणावियो। १.२
चोहटे चाल ज्युं कहूं यें राचना। १२.५

अन्त मेल— चरण में प्रथम शब्द के आदि वर्ण की आवृत्ति उसी चरण के अन्तिम शब्द के अन्त में हो—

दूसरा दुरसठ ततकाल कीधा तदे। २५.६
तवें जरासंध ससपाल रहें सावतो। १३६.४३

मध्यम कोटि की वैण-सगाई असमान स्वरों, स्वर और य अथवा व का मेल होने पर कही जाती है जिसके कतिपय उदाहरण इस प्रकार हैं—

अवर अपरोग थया राजवंस एतला। ४.३
ऊपजे आहीज मत बुधपण आवए। ४.३
ओलषीआ चरण वावरण वेवसा। ५६.१६

अधम कोटि की वैण-सगाई विभिन्न वर्गो जैसे 'ट' वर्ग और 'त' वर्ग अथवा अल्प प्राण और महाप्राण वर्णों का मेल होने पर मानी जाती है। यथा—

तात नें मात वीवाह पड भड टली। ८.४
चोकरा आय कुमेररा छोडोया। १७.७

---

१. प्रथम अंक छंद संख्या का और द्वितीय अंक पृष्ठ-संख्या का सूचक है।

"हरण" के अनेक छन्दों में "वैण-सगाई" का निर्वाह नहीं भी देखा जाता जिसका कारण यही हो सकता है कि तब तक वैण-सगाई की राजस्थानी काव्य में विशेषता अवश्य हो गई थी किन्तु उसका निर्वाह अनिवार्य नहीं हो पाया था।

"हरण" की प्राप्त सभी प्रतियों में काव्य में प्रयुक्त प्रमुख छन्द का नाम "झंपताल" मिलता है। झंपताल का प्रयोग गाहा चोसर और दूहे के पश्चात् अन्त तक हुआ। "झंपताल" नामक छन्द का विवरण सुप्रसिद्ध छन्द शास्त्रीय ग्रन्थ "छन्दः प्रभाकर" नामक ग्रन्थ[1] में उपलब्ध नहीं होता। चारण कवि किसनाजी आढ़ा रचित "रघुवरजस-प्रकास"[2] नामक राजस्थानी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में झंपताल के लक्षण उदाहरण सहित इस प्रकार दिये हैं—

"छंद झंपताल"

गुर अंत मत चवदह गिणै। मल झंपताली कवि भणै॥
रघुनाथ जेण रिझावियो। पद उदय तै कवि पाइयो॥

कवि हरराजकृत "पिंगलसिरोमणि" नामक राजस्थानी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ में "झंपताल" के निम्नलिखित लक्षण बिताये गये हैं—

रिम मेघ मत्त विसामयं ताटंक रिम फिर रस तयं।
झंपटाल झफालियं इण दोय नांमा दाखियं॥[3]

छन्द झंपताल कालान्तर में चरणान्त में गुरु सहित १४ चौदह मात्राओं का ही प्रचलित हुआ जैसा कि कविया करणीदानजी कृत सूरज प्रकास मे प्रकट होता है—

"छंद जात झंपताल"

वारियांम चौड वखाणियै।
जगजीत ग्रद घर जांणियै।
असुराण हिण जुध अवियो।
लड़ि फेर मंडोवर लियो॥६८

---

१. कर्त्ता-श्री जगन्नाथ प्रसाद "भानु", प्रकाशक-भारत-जीवन प्रेस, काशी।

२. सम्पादक—श्री सीताराम लालस, प्रकाशक—राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

३. सम्पादक—श्री नारायणसिंह भाटी, प्रकाशक—राजस्थानी शोध संस्थान, चोपासनी, जोधपुर, पृ. ६३।

यह खांन जादा पाछटे ।
इल नागपुर गढ़ आछटे ।
जल धरम व्रद भुज छाजिया ।
दानि सात सांमरा कारि दिया ॥६६॥[1]

उक्त लक्षण "हरण" में प्रयुक्त 'झंपताल" में पूरे नहीं उतरते। साथ ही प्राचीन प्रतियों में छन्द-सम्बन्धी एकरूपता भी नहीं है और पाठ-सम्पादन की वैज्ञानिक विधि के अनुसार प्राचीन पाठों को विना किसी परिवर्तन के-यथारूप ग्रहण किया गया है। ऐसी अवस्था में यही संभावना प्रकट की जा सकती है कि "हरण" में प्रयुक्त छन्द "झंपताल" प्रचलित "झंपताल" का कोई भेद है अथवा लिपिकारों ने असावधानी रक्खी है। प्रति-लिपिकर्त्ता पं. कीर्ति कुशुलगरिण को, जिसका पाठ प्रस्तुत सम्पादन में मुख्य रूप में ग्रहण किया गया है, उक्त दोष नहीं किया जा सकता क्योंकि इसकी लिपि स्पष्ट और कुशल हाथों से लिखित है।

"ङ" संवाद और सूक्तियाँ

हरण में संवादों और सूक्तियों की छटा अनेक प्रसंगों में विशेष रुचिकर हो गई है। संवादों से सम्वन्धित पात्रों के चरित्र-चित्रण और प्रसंग-निरूपण में चमत्कारपूर्ण स्वाभाविकता का समावेश हो जाता है। प्रस्तुत काव्य में मुख्यतः निम्नखिखित संवाद दर्शनीय हैं—

१. भीष्मक और रुक्मैया-संवाद, छंद संख्या ३–५१।
२. श्रीकृष्ण और विप्र- (संदेश वाहक) संवाद, छंद सं. ७०–७१।
३. जरासंध और शिशुपाल-संवाद, छंद सं. १३६–१४०।
४. जरासिंध और बलदेव-संवाद, छंद सं. १७८–१७६।

उक्त संवादों मे भीष्मक-रुक्मैया-संवाद सुविस्तृत है क्योंकि इसमें भीष्मक और रुक्मैया दोनों की दृष्टि से श्रीकृष्ण-चरित्र का विवेचन हुआ है। रुक्मैया कृष्ण को एक सामान्य ग्वाला बताता है और भीष्मक उन्हें पूर्णब्रह्म परमेश्वर मानते हैं। सुविस्तृत संवाद और विवेचन के उपरान्त भी दोनों व्यक्ति अपने-अपने पक्ष पर ही दृढ़ रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप काव्य में संघर्ष की नींव पड़ती है।

---

१. सम्पादक—श्री सीताराम लालस, प्रकाशक—राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान; जोधपुर, भाग १, पृ. २४४।

रुक्मैया राजा की इच्छा के विपरीत शिशुपाल को लग्नपत्रिका भेज देता है और राजा अन्त तक श्रीकृष्ण के पक्ष में रहते हैं।

कथागत दूसरा प्रमुख संवाद श्रीकृष्ण और संदेश-वाहक विप्र का है। (छंद-संख्या ७०–७१)। दो छन्दों के छोटे संवाद में ही श्रीकृष्ण ने विप्र की कुशल-क्षेम पूछते हुए उसका परिचय प्राप्त कर द्वारिका आने का कारण ज्ञात कर लिया। तीसरा मुख्य संवाद युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत जरासंध और शिशुपाल का है (छन्द सं. १३६–१४०)। इस संवाद में दोनों ही व्यक्ति एक-दूसरे को तत्परतापूर्वक युद्ध करने के लिये कहते हैं। चौथे जरासंध और बलदेव के संवाद (छन्द सं. १७६–१७९) में जरासंध की गर्वोक्तियों और बलदेव के तथ्यपूर्ण वचनों का समावेश है।

काव्यगत अन्य गौण संवादों में बलदेव-प्रतिहार सवाद (छंद सं. ८१–८३) और लग्नवेला निश्चित करने के प्रसंग में वसुदेव-देवकी तथा विप्र का संवाद (छंद सं. २०३–२०५) आदि हैं।

संवाद-लेखन में सायांजी पूर्ण कुशल हैं और अनेक बार एक ही छन्द में प्रश्न एवं उत्तर का समावेश हुआ है। परिस्थिति और मनोवृत्तियों के अनुकूल संवादों की योजना में कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है जिससे नाटकीय छटा की झलक अनायास ही मिल जाती हैं।

काव्यगत अनेक सूक्तियां सम्बन्धित वातावरण के सर्वथा अनुकूल होती हुई पाठकों का ध्यान आकर्षित करने में सफल हुई है। ऐसी सूक्तियों से काव्यगत प्रसंग प्रभावपूर्ण बन गये हैं। 'हरण' की कतिपय सूक्तियां निम्नलिखित हैं—

१. आंगली आषतां बांह एणें गली। छंद सं. ७, पृ. सं. ४
२. हेतरा जुगत सुं जगत बैकुंठ हुवे। ६७.२२
३. कन्या हेक ने वर दोय चडीया कडे। १०३.३२
४. हरि तणो जांणीयो सोइ आषर हुसें। १०४,३३
५. राषीये रतन जिम जतन कर रुषमणी। १०६.३३
६. चालतो कोट चौफेर लीधो चुणी। ११७.३७
७. कूद गया कायरां वाजती काहली। १५१.४७
८. किसन कारज बने पंथ हेकण कीया। १६४.५६, आदि।

'च' उपसंहार

भक्त कवि सांयाजी भूला का "रुषमणी-हरण" राजस्थानी-साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न है। "हरण" के प्रकाशन से सदियों से प्रवाद रूप में प्रचलित

मुगल सम्राट अकबर की उक्ति के सत्यासत्य का निर्णय भी सुविज्ञ पाठक कर सकेंगे कि "पृथ्वीराज ! तुम्हारी 'वेल' को चारण बाबा का 'हरण' चर गया।"[1] "हरण" का युद्ध-वर्णन वेलि से अधिक सजीव और संपूर्ण है किन्तु वेलि की अनुपम भाव-व्यंजना, अनूठे उक्ति-वैचित्र्य और मौलिक कल्पनाओं की ऊंचाई तक "हरण" छलांग नहीं लगा सका है।

---

१. (क) कृष्ण रुक्मिणी री वेलि, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, भूमिका, पृ. ४६।

(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० मोतीलालजी मेनारिया, हिंदी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, पृ. १७६।

(ग) राजस्थानी शब्द-कोष, श्री सीतारामजी लालस, राजस्थानी शोध-संस्थान, चोपासनी, जोधपुर, भूमिका पृ. १४४।

: ५ :

स्वाधीनता का प्रेरणास्रोत: राजस्थानी काव्य

राजस्थान के आबाल-वृद्ध नर-नारियों ने मध्यकाल में स्वाधीनता और मान-मर्यादा की रक्षा हेतु असीम त्याग और बलिदान किए हैं इसलिए राजस्थान हमारे देश की वीर-भूमि के रूप में विख्यात हो गया है। इस विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार जेम्स टॉड ने अपने "एनल्स एण्ड एण्टीक्वीटीज ऑफ राजस्थान" नामक ग्रंथ में लिखा है, "राजस्थान में एक भी छोटा राज्य ऐसा नहीं है जिसमें थरमोपोली जैसी युद्ध-भूमि न हो और कदाचित् ही कोई ऐसा स्थान हो जिसने लियोनिडास जैसा योद्धा नहीं उत्पन्न किया हो।"

मध्यकाल में राजस्थानी वीर-वीरांगनाओं ने आक्रांताओं का सामना करते हुए मरण को महान् त्योहार माना और प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणों को मातृ-भूमि की रक्षा हेतु न्योछावर कर दिया। वीरों को इस प्रकार प्रेरित करने का प्रधान श्रेय राजस्थानी काव्य को ही है। राजस्थानी कवि स्वयं सेना के अग्र भाग में लड़ते हुए अपनी वीर-रसमय वाणी के साथ ही अपनी तलवार का चमत्कार भी प्रदर्शित करते थे।

राजस्थानी काव्य में सभी रसों की सृष्टि हुई किन्तु राजस्थानी वीर-रसात्मक रचनाओं की समानता अन्यत्र दुर्लभ है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने वीर रसात्मक राजस्थानी रचनाओं से प्रभावित होते हुए "माडर्न रिव्यू" सितम्बर १९३८ ई० में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किए—"राजस्थान ने अपने रक्त से जिस साहित्य का निर्माण किया है वह अद्वितीय है और उसका कारण भी है। राजस्थान के कवियों ने जीवन की कठोर वास्तविकताओं का स्वयं सामना करते हुए युद्ध के नक्कारे की ध्वनि के साथ स्वभावतः अयत्नज काव्य-गान किया। उन्होंने अपने सामने साक्षात् शिव-तांडव की तरह प्रकृति का नृत्य देखा था। क्या आज कोई अपनी कल्पना द्वारा उस कोटि के काव्य की रचना कर सकता है?"

राजस्थानी कवियों ने वीर रस का सर्वांगसुन्दर निरूपण किया है। इन कवियों की दृष्टि सेना-प्रयाण और युद्ध-भूमि की मारकाट तक ही सीमित नहीं रही वरन् घर पर बैठी हुई शूरवीर योद्धा की माता, बहिन और विवाहिता की मनोभावनाओं तक पहुंची है। शूरवीर की मृत्यु पर इन महिलाओं में शोक का नहीं किन्तु प्रसन्नता का सचार हुआ और इनकी भावनाओं का राजस्थानी कवियों ने अनूठे रूप में वर्णन किया।

वीर-योद्धा की मृत्यु पर उसकी विवाहिता प्रसन्न होती हुई अपनी सखी से कहती है—

भल्ला हुआ जु मारिया, वहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअइ, जइ भग्गा घरु एंतु॥

अर्थात्—हे सखी मेरा पति अच्छा हुआ कि युद्ध में मारा गया, यदि वह भागकर घर लौट आता तो मुझे अपनी सहेलियों में लज्जित होना पड़ता।

अपनी धरती की रक्षा को बहुत प्राचीनकाल से ही महत्व दिया जाता रहा है। इस विषय में कहा गया है—

पुत्ते जाएँ कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुंहडी, चम्पिज्जई अवरेण॥

अथात् पुत्र उत्पन्न होने से क्या लाभ और उसके मरने से क्या हानि? यदि अपने पूर्वजों की भूमि पर दूसरे अधिकार करलें।

शिवदास चारण ने विक्रमी संवत् १४७० में "वचनिका अचलदास खीचीरी" लिखी जिसमें स्वाधीनता का महत्व इस प्रकार बताया गया है—

एकइ वन्न वसंतड़ा, एवड़ अंतर काय।
सिंघ कवड्डी ना लहै, गयवर लाख विकाय॥
गयवर गले गलथ्थियो, जइं खँचे तहँ जाय।
सिंघ गलथ्थण जे सहै, तो दह लाख विकाय॥

अर्थात्—सिंह और हाथी एक ही वन में रहते हैं किन्तु दोनों में इतना अन्तर क्यों है कि सिंह की कोड़ी भी नहीं मिलती और हाथी लाख रुपए में बिकता है? कवि कहता है कि हाथी अपने गले में बन्धन स्वीकार करता है और उसको जहां खींचा जाता है, वहां जाता है, यदि सिंह गले में बंधन स्वीकार करले तो वह दस लाख रुपयों में बिके।

बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज राठौड़ (सं० १६०६–१६५७) ने अकबर के दरबार में रहते हुए भी स्वाधीनता संग्राम के अमर सेनानी महाराणा प्रताप की प्रशंसा में काव्य रचना की। पृथ्वीराज का एक गीत इस प्रकार है—

नर जेथ निमाणा निलजी नारी,
अकबर गाहक वट अवट।
चोहटै तिण जायर चीतोड़ो,
वेचै किम रजपूत वट ॥१॥

रोजायतां तणै नवरोजै,
जेथ मुसाणा जणो जण।
हींदू-नाथ दिल्लीचै हाटै,
पतो न खरचै खत्रीपण ॥२॥

परपच लाज दीठ नह व्यापण,
खोटो लाभ अलाभ खरो।
रज वेचवा न आवै राणो,
हाटै मीर हमीर हरो ॥३॥

पेखे आपतणा पुरसोतम,
रह अणियाल तणै बल राण।
खत्र वेचिया अनेक खत्रियां,
खत्रवट थिर राखी खुम्माण ॥४॥

जासी हाट बात रहसी जग,
अकबर ठग जासी एकार।
राख्यो खत्री ध्रम राणै,
सारा ले बरतो संसार ॥५॥

अर्थात्—जहां पुरुषों का मान और स्त्रियों की लज्जा नहीं रहती, जिस बाजार के रास्ते टेढ़े-मेढ़े हैं और जहां अकबर जैसा ग्राहक है, ऐसे नौ रोज के बाजार में जाकर चितौड़ का स्वामी महाराणा प्रताप अपनी राजपूती कैसे बेच सकता है ॥१॥

मुगल सम्राट अकबर के नौरोज में प्रत्येक व्यक्ति लूट लिया गया किन्तु महाराणा प्रताप ने दिल्ली के उस बाजार में जाकर अपनी राजपूती को नहीं खोया ॥२॥

हमीर का वंशज महाराणा प्रताप, प्रपंची अकबर की दृष्टि अपने पर नहीं पड़ने देता और अकबर से मिलने वाली पराधीनता के सुख-रूपी लाभ को बुरा और स्वाधीनता की दुख-रूपी हानि को अच्छा समझकर बादशाही दुकानों पर अपनी राजपूती नहीं बेचता ॥३॥

हे खुमाण के वंशज महाराणा प्रताप, आपने अपने महान पूर्वजों के कर्त्तव्यों को देखते हुए अपने शस्त्रों के बल से क्षत्रियधर्म को अचल रखा किन्तु दूसरे अनेक राजपूतों ने उसको बेच दिया ॥४॥

अकबर जैसा ठग एक दिन इस संसार से चला जायेगा और उसका यह बाजार भी उठ जायेगा। संसार में यही बात रहेगी कि महाराणा प्रताप ने क्षत्रिय धर्म की रक्षा की। संसार के लोगों ! इस बात को समझ कर अपना व्यवहार करो ॥५॥

महाकवि दुरसाजी आढ़ा (सं० १५९२–१७१२) अपने समय के परम राष्ट्रीय कवि थे जिन्होंने महाराणा प्रताप की प्रशंसा में "विरुद छहत्तरी" का निर्माण किया—

अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपति।
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी ॥
थिर नृप हिन्दुस्थान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥

अर्थात्—अकबर के पास से राजा लोग मस्तक झुका कर निकल गए। इस पृथ्वी पर एक मात्र महाराणा प्रताप ने ही उसके सामने अपना मस्तक नहीं झुकाया।

हिन्दुस्तान के स्थिर रहने वाले राजा लोग लोभ के रास्ते में पड़ कर भ्रष्ट हो गये, किन्तु महाराणा प्रताप इस पृथ्वी को माता मानकर पूजता है।

कविराजा वांकीदास (सं० १८२८–१८९०) ने भारत में अंग्रेजी शासन का विरोध करते हुए हिन्दु-मुस्लिम एकता का समर्थन किया। वांकीदास जी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के विद्या-गुरु थे। इन्होंने सत्ताईस काव्य और राजस्थानी गद्य में राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी वार्ताएं लिखी जिनका प्रकाशन हो चुका है। वांकीदास जी की रचनाओं का उदाहरण—

गाज इतै ऊखेड़ गज, माझल वन तर मूल।
जागै नह थह में जितै, सझ हाथल सादूल ॥
सीहाँ देस विदेश सम, सीहाँ किसा उतन्न।
सीह जिकै वन संचरे, सो सीहाँरो वन्न ॥

अर्थात्—हे हाथी, जब तक सिंह अपनी माँद में जागकर अपना पंजा नहीं उठा ले तब तक ही तू वन में चिंघाड़ कर वृक्षों को उखाड़ सकता है, आगे नहीं।

सिंहों के लिए देश-विदेश दोनों बराबर हैं। सिंहों का कैसा वतन ? जिस वन में सिंह घूमें वही सिंहों का वन होता है।

महाकवि सूर्यमल (सं. १८६२–१९२०) ने सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम को प्रेरित करते हुए अपनी वीर-सतसई के दोहे लिखे। महाकवि सूर्यमल स्वाधीनता के पूर्ण समर्थक और वीर रस के उत्कृष्ट कवि थे। सूर्यमल के दोहों में वीर माता अपने पुत्र को मरने की महत्ता इस प्रकार बताती है—

इला न देगी आपरी, रण खेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावे पालणे, मरण बड़ाई माय॥

अर्थात् माता पालने में झूला देती हुई ही अपने पुत्र को मरने की महत्ता सिखाती है कि हे पुत्र, रण क्षेत्र में भिड़ जाना किन्तु अपनी धरती किसी को नहीं देना।

चारण कवि केसरीसिंह जी बारहठ (सं. १९२९–१९९८) राजस्थान में क्रान्तिकारी दल के नेता थे जिन्होंने मातृभूमि की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। इनके पुत्र प्रतापसिंह को भी ब्रिटिश शासन की कोपाग्नि का शिकार होना पड़ा। केसरीसिंह ने उदयपुर के महाराणा फतहसिंह को "चेतावणी रा चूंगट्या" के रूप में राजस्थानी दोहे लिख कर सन् १९१२ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार में जाने से रोक दिया था।

राजस्थानी भाषा में अनेक कवि आधुनिक काल में पूर्व-परम्परानुसार वीर रस में उत्कृष्ट काव्य-रचना करते हुए भारतीय स्वाधीनता की प्रेरणा दे रहे हैं। नाथूदान जी महियारिया (ज० १८९२ ई०) ने अपनी वीर-सतसई में अनेक उत्कृष्ट दोहे लिखे हैं।

आजकल अनेक कवि राजस्थानी भाषा में स्वाधीनता के समर्थन में उत्कृष्ट काव्य-रचना कर रहे हैं। नाथूदानजी महियारिया ने अपनी वीर सतसई के अन्तर्गत दोहों में लिखा है—

रण कर-कर रज-रज रंगे, रिवढंके रज हूंत।
रज जेती धर नहं दिये, रज-रज व्है रजपूत॥

अर्थात् राजपूत योद्धा युद्ध करता हुआ धरती के कण-कण को रक्त से रंग देता है और टुकड़े-टुकड़े होकर भी रज जितनी धरती शत्रुओं को नहीं देता है।

रजपूतां गुण पूछती, देख सखी सावून।
धड़ पड़िया धर कारणै, रज भेला रजपूत॥

सखी ! तू राजपूतों के गुण पूछती थी। अब प्रत्यक्ष ही देखलो कि राजपूतों के धड़ धरती के कारण धूल में मिले हुए पड़े हैं।

हे खुमाण के वंशज महाराणा प्रताप, आपने अपने महान पूर्वजों के कर्त्तव्यों को देखते हुए अपने शस्त्रों के बल से क्षत्रियधर्म को अचल रखा किन्तु दूसरे अनेक राजपूतों ने उसको बेच दिया ।।४।।

अकबर जैसा ठग एक दिन इस संसार से चला जायेगा और उसका यह बाजार भी उठ जायेगा। संसार में यही बात रहेगी कि महाराणा प्रताप ने क्षत्रिय धर्म की रक्षा की। संसार के लोगों ! इस बात को समझ कर अपना व्यवहार करो ।।५।।

महाकवि दुरसाजी आढ़ा (सं० १५९२–१७१२) अपने समय के परम राष्ट्रीय कवि थे जिन्होंने महाराणा प्रताप की प्रशंसा में "विरुद छहत्तरी" का निर्माण किया—

अकबर कनै अनेक, नम नम नीसरिया नृपति ।
अनमी रहियो एक, पहुवी राण प्रतापसी ।।
थिर नृप हिन्दुस्थान, लातरगा मग लोभ लग ।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ।।

अर्थात्—अकबर के पास से राजा लोग मस्तक झुका कर निकल गए। इस पृथ्वी पर एक मात्र महाराणा प्रताप ने ही उसके सामने अपना मस्तक नहीं झुकाया।

हिन्दुस्तान के स्थिर रहने वाले राजा लोग लोभ के रास्ते में पड़ कर भ्रष्ट हो गये, किन्तु महाराणा प्रताप इस पृथ्वी को माता मानकर पूजता है।

कविराजा बांकीदास (सं० १८२८–१८९०) ने भारत में अंग्रेजी शासन का विरोध करते हुए हिन्दु-मुस्लिम एकता का समर्थन किया। बांकीदास जी जोधपुर के महाराजा मानसिंह के विद्या-गुरु थे। इन्होंने सत्ताईस काव्य और राजस्थानी गद्य में राजस्थान-इतिहास सम्बन्धी वार्ताएं लिखी जिनका प्रकाशन हो चुका है। बांकीदास जी की रचनाओं का उदाहरण—

गाज इतै ऊखेड़ गज, माझल वन तर मूल ।
जागै नह थह में जितै, सझ हाथल सादूल ।।
सीहाँ देस विदेश सम, सीहाँ किसा उतन्न ।
सीह जिलै वन संचरे, सो सीहाँरौ वन्न ।।

अर्थात्—हे हाथी, जब तक सिंह अपनी माँद में जागकर अपना पंजा नहीं उठा ले तब तक ही तू वन में चिंघाड़ कर वृक्षों को उखाड़ सकता है, आगे नहीं।

सिंहों के लिए देश-विदेश दोनों बराबर हैं। सिंहों का कैसा वतन ? जिस वन में सिंह घूमें वही सिंहों का वन होता है।

महाकवि सूर्यमल (सं. १८६२–१९२०) ने सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता संग्राम को प्रेरित करते हुए अपनी वीर-सतसई के दोहे लिखे। महाकवि सूर्यमल स्वाधीनता के पूर्ण समर्थक और वीर रस के उत्कृष्ट कवि थे। सूर्यमल के दोहों में वीर माता अपने पुत्र को मरने की महत्ता इस प्रकार बताती है—

इला न देणी आपरी, रण खेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावे पालणे, मरण बड़ाई माय॥

अर्थात् माता पालने में झूला देती हुई ही अपने पुत्र को मरने की महत्ता सिखाती है कि हे पुत्र, रण क्षेत्र में भिड़ जाना किन्तु अपनी धरती किसी को नहीं देना।

चारण कवि केसरीसिंह जी बारहठ (सं. १९२९–१९९८) राजस्थान में क्रान्तिकारी दल के नेता थे जिन्होंने मातृभूमि की सेवा में अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया था। इनके पुत्र प्रतापसिंह को भी ब्रिटिश शासन की कोपाग्नि का शिकार होना पड़ा। केसरीसिंह ने उदयपुर के महाराणा फतहसिंह को "चेतावणी रा चूंगट्या" के रूप में राजस्थानी दोहे लिख कर सन् १९१२ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार में जाने से रोक दिया था।

राजस्थानी भाषा में अनेक कवि आधुनिक काल में पूर्व-परम्परानुसार वीर रस में उत्कृष्ट काव्य-रचना करते हुए भारतीय स्वाधीनता की प्रेरणा दे रहे हैं। नाथूदान जी महियारिया (ज० १८९२ ई०) ने अपनी वीर-सतसई में अनेक उत्कृष्ट दोहे लिखे हैं।

आजकल अनेक कवि राजस्थानी भाषा में स्वाधीनता के समर्थन में उत्कृष्ट काव्य-रचना कर रहे हैं। नाथूदानजी महियारिया ने अपनी वीर सतसई के अन्तर्गत दोहों में लिखा है—

रण कर-कर रज-रज रंगे, रिवढंके रज हूंत।
रज जेती धर नहं दिये, रज-रज व्है रजपूत॥

अर्थात् राजपूत योद्धा युद्ध करता हुआ धरती के कण-कण को रक्त से रंग देता है और टुकड़े-टुकड़े होकर भी रज जितनी धरती शत्रुओं को नहीं देता है।

रजपूतां गुण पूछती, देख सखी साबूत।
धड़ पड़िया धर कारणै, रज भेला रजपूत॥

सखी ! तू राजपूतों के गुण पूछती थी। अब प्रत्यक्ष ही देखलो कि राजपूतों के धड़ धरती के कारण धूल में मिले हुए पड़े हैं।

भारत-चीन-संघर्ष के प्रसंग में राजस्थानी भाषा में अनेक कवियों ने उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत की हैं। परमवीर चक्र प्राप्त मेजर शैतानसिंह द्वारा लद्दाख में चुशूल क्षेत्र की रक्षा करते हुए वीर गतिग्रहण करने पर अनेक राजस्थानी कवियों ने अनूठी अभिव्यक्ति की जिनमें श्री नारायणसिंह भाटी प्रमुख है। अपने "परमवीर" नामक काव्य-ग्रन्थ में वीर रस की अपेक्षा "करुणरस" का प्राधान्य है—

धण मत जांणे उतरीयौ, तो तन रौ सिणगार।
उण सांप्रत देस सिंगारियो, जस रे जीतणहार॥

वीर नारी यह मत समझना कि शैतानसिंह की मृत्यु पर तुम्हारे तन के सुहागसूचक शृंङ्गार आज उतर गये हैं। उस वीर ने यश अर्जित कर समस्त देश का शृंङ्गार किया है।

औ त्यौहारां देसड़ौ, तिथ पर होय त्यौहार।
बिनां वार तिथ आवणों, मोटो मरण त्यौहार॥

यह भारत त्यौहारों का देश है, जहां तिथि के अनुसार त्यौहार होते हैं। यहां मरण-त्यौहार बड़ा है क्योंकि यह बिना निश्चित वार और तिथि के ही आयोजित किया जाता है।

इस प्रकार वीरता को प्रेरित करने हेतु अनेक राजस्थानी कवि अवसर के अनुकूल नवीन भावनाओं के साथ आगे आ रहे हैं और राजस्थानी काव्य आज भी स्वाधीनता के लिते प्रेरणा-स्रोत बना हुआ है।

—:०:—

: ६ :

छन्द राव जइतसी रउ

जोधपुर-नरेश राव जोधाजी के राव बीकाजी हुए, जिन्होंने अपने प्रबल पराक्रम से बीकानेर राज्य की स्थापना की। राव बीकाजी के राव लूणकरणजी हुए, जिन्होंने अपनी वीरता से बीकानेर राज्य की बढ़ोतरी की। इन्हीं राव लूणकरणजी के राव जैतसी जी हुए, जिन्होंने मुगल सम्राट बाबर के दूसरे पुत्र कामरान को युद्ध में पराजित किया और कई दूसरे वीरता के काम किये।

राव जैतसी अपने पिता राव लूणकरणजी के युद्ध में वीरगति प्राप्त करने पर संवत् १५८३ में बीकानेर की राज्यगद्दी पर बैठे। गद्दी पर बैठते ही राव जैतसी ने अपने पिता के शत्रुओं का बदला लेने के लिए द्रोणपुर पर चढ़ाई की। वहां का राजा कल्याणमल भाग कर नागौर के खान के पास चला गया। राव जैतसी ने जयपुर के कछवाहे सांगा की और जोधपुर के राव गांगा की भी सहायता की किन्तु राव जैतसी ने सबसे प्रसिद्ध कार्य काबुल और लाहौर के स्वामी कामरान को युद्ध में परास्त करने का किया। राव जैतसी और कामरान के इस युद्ध का वर्णन कई कवियों ने किया है। इन कवियों में बीठू शाखा के चारण कवि सूजा का नाम प्रमुख है जिसने "छंद राव जइतसी रउ" लिख कर बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। "छंद राव जैतसी रो" का सम्पादन राजस्थानी भाषा के सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान् इटली के डाक्टर एल. पी. तैसीतोरी ने बड़ी योग्यता से किया है। डॉ. तैसीतोरी के मतानुसार यह ग्रन्थ युद्ध के केवल एक वर्ष बाद लिखा गया था जिसके इसका ऐतिहासिक दृष्टि से भी बड़ा महत्व है।

"छन्द राव जैतसी रो" राजस्थानी भाषा का एक अनूठा काव्य है। इसमें कुल ४०१ पद्य हैं जिनमें ३८५ पावड़ी, ११ गाहा, ४ दूहा और १ कवित्त हैं। वयण-सगाई नामक राजस्थानी भाषा के सुप्रसिद्ध अलंकार की छटा इस काव्य में विशेष उल्लेखनीय है। इस काव्य में वर्णन-शैली बड़ी ओजपूर्ण और सजीव है।

चारण कवि सुजा ने जैतसी के पूर्वजों का वर्णन करते हुए राव लूणकरणजी की दान-वीरता और शूरवीरता का भी वर्णन किया है। राव लूणकरण को कर्ण के समान दानी बताते हुए सुजा ने लिखा है—

कलि कालि पराक्रम ए करन्न।
देखियई दुवापुर दिख्या दन्न ॥

कवि ने राव लूणकरण की दानवीरता की प्रशंसा इस प्रकार की है—

तेडिया नर हूंता गुजरात,
वीकउत उबारण सुजस वात।
ताजी हसत्ति दीन्हा तिमाई,
रणहुंत पिता मांखावि राई ॥

× × ×

इल राइ करन वारउकि इंद,
गुणियणा ग्रिहे बाध्या गइंद।
ताकुआरेसि सोभाग तत्ति,
हिन्दुवइ राइ दीन्हा हसत्ति ॥

अकाल में उदारता पूर्वक जनता की सहायता करने का वर्णन इस प्रकार किया है—

नव सहस राइ नीसाण नाद,
पजिजह देव आगी प्रसाद।
चउपनव समीसर करनि चालि,
दवरउ दुनी राखी दुकालि ॥

× × ×

करन राउ करई करामइ कडाहि,
मेदनी उबारी महल माहि ॥

सूजा ने "राव जैतसी रो छंद" में मुगल सम्राट बाबर के आक्रमणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि सर्व प्रथम देवकरण पंवार ने बाबर को रोकने का प्रयत्न किया किन्तु उसको हारना पड़ा। बाबर ने भाखर, अराड़, मुलतान, खड़, सातलमेर, मारोठ देरावर, जम्मू, लाहोर आदि स्थानों पर अधिकार किया। फिर बाबर ने लोदियों से दिल्ली, मीरों से आगरा और पठानों से बयाना जीता। जौनपुर, अयोध्या, बिहार भी बाबर ने ले लिये। फिर मेवाड़ के महाराणा सांगा की अधीनता में एकत्रित राजपूतों की भारी सेना को भी बाबर ने हरा दिया। बाबर ने अलवर,

आमेर, सांभर और नागोर को भी जीत लिया। बाबर के मरने पर उसके पुत्र कामरान ने काबुल, कन्दहार, गजनी और पंजाब में अपना शासन स्थापित किया। सूजा ने "छंद राव जैतसी रो" में लिखा है कि कामरान ने सारे मारवाड़ को जीतने का निश्चय कर एक बड़ी सेना के साथ सतलज नदी को पार कर भटनेर अर्थात् हनुमानगढ़ पर आक्रमण किया। भटनेर पर उन दिनों कांधल के पौत्र खेतसी का शासन था। खैतसी ने कामरान की अधीनता नहीं स्वीकार की। वह अपने साथी वीरों के साथ तीरों और तोपों का सामना करता हुआ युद्ध के मैदान में मारा गया। भटनेर को जीतकर कामरान की सेना बीकानेर की ओर रवाना हुई। कामरान ने राव जैतसी के पास दूत भेजे और अधीनता स्वीकार करने का अनुरोध किया किन्तु राव जैतसी ने वीरता पूर्वक यह उत्तर दिया—

"मेरे पूर्वज मल्लीनाथ, सांतल, रणमल, जोधा, बीका, दूदा और लूणकरण ने जैसे विदेशी आक्रमणकारियों का गर्व-भंजन किया है उसी प्रकार मैं तुम्हारा भी करूंगा।"

कामरान ने यह सुन कर बीकानेर पर आक्रमण कर दिया।

सूजा ने लिखा है कि "इस अवसर पर राव जैतसी ने बहुत चतुराई से काम कर गढ़ को खाली कर कामरन की सेना को भीतर जाने दिया। भोजराज रूपावत कुछ भाटियों के साथ पुराने गढ़ में लड़ते हुए मारा गया।

राव जैतसी बीकानेर पर पुनः अधिकार करने की तैयारी में लगा रहा। एक रात को अवसर देख कर राव जैतसी ने अपने ४ भाईयों, १०९ वीर राजपूत सरदारों और एक सुसज्जित सेना के साथ कामरान पर आक्रमण कर दिया। सूजा ने राव जैतसी के युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है—

घडहडै ढांल घूजै धरत्ति,
खडियालगि वरसै खैडपत्ति।
बीकाहर राजा दंद वग्गि।
खाफरां सिरे खिवियां खडग्गि॥
पतिसाह फौज फुरन्ति पालि,
ब्रहमंड जैत गाजै विचालि।
अम्बहर जैत वरसै अवार,
घुडुकिया मीर भुंहि खग्गधार॥

× × ×

रउद् दल रहच्चइ जइतराउ,
होहू कि मैह वाजइ इलाउ।

ताइयां उरैं धरैं कूंत तेह,
मारु अउ राउ मातउ कि मेह ॥

चारण कवि सूजा ने युद्ध का ऐसा सजीव वर्णन किया है कि हमारे सामने युद्धभूमि का चित्र उपस्थित हो जाता है। घोड़ों की भाग-दौड़, तोपों की घनघोर गर्जना, वीरों की सिंह-गर्जना, धरती का कांपना, शस्त्रों की चमक-दमक, वीरों के प्रहार, कायरों के पलायन, घायलों के छटपटाने आदि का दृश्य "छंद राऊ जइतसी रो" पढ़ते समय सजीव रूप में हमारे सामने आ जाता है—

किय हूकल अंचल कलल,
गइ ग्रांवक्क गडक्क ।
दरस्यउ सरि सुरितांण दल,
चलचल च्यारे चक्क ॥

× × ×

पाए हसम्मि हालत पयाल,
फडफडइ नाग फाटइ फुणाल ।
रायां राउ ऊपरि असुर, राई,
जलराण जाणं मेल्ही ग्रजाई ॥
पुड सातइ धूजिय पवंग पाइ,
नागींद नाचि नोवति निहाइ ।
भूझारां आगी झिखइ झाल,
मुस्साहल जाण नखत माल ॥
पतिसाह सेन दीवी परिख्ख,
उडियण किरि आवइ अंतरिख्ख ।
रेवंत खेडि चड पहर राति,
पतिसाह सेन ढूका प्रभाति ॥

राव जैतसी के प्रबल आक्रमण के सामने कामरान की सेना नहीं ठहर सकी और प्रभात होने से पूर्व ही पुनः लाहौर की ओर भाग गई। इस प्रकार बीकानेर पर राव जैतसी का फिर से अधिकार हो गया । चारण कवि सूजा ने "राव जैतसी रो छन्द" में लिखा है कि "राव जैतसी के पराक्रम की यह गाथा राठोड़ों के इतिहास में अमर रहेगी ।"

—:०:—

: ७ :

महाराणा प्रताप-सम्बन्धी राजस्थानी काव्य

स्वाधीनता-संग्राम के अमर सैनानी, प्रणवीर महाराणा प्रताप का उज्जवल आदर्श सदियों से देश-सेवा में सर्वस्व त्याग कर अपनी असीम कष्टसहिष्णुता का अनुपम परिचय देने वाले शूरमाओं को प्रेरित करता रहा है। महाराणा प्रताप का वीर चरित्र स्वाधीनता-संग्राम में लड़ कर मर मिटने वाले वीरों और अपनी मान-मर्यादा के लिये जौहर-ज्वाला में भस्मीभूत होने वाली वीरांगनाओं का प्रेरणादायी प्रतीक रहा है, साथ ही प्राप्त स्वाधीनता को सुरक्षित रखते हुए युगान्तरकारी नव-निर्माण में देश को सुखमय बनाने वाले लोकनेताओं और लोक-सेवकों के लिये भी वह महान् आलोकमय, मार्गदर्शक प्रकाश स्थंम बना हुआ है।

महाराणा प्रताप के अनुपम वीर-चरित्र ने देश के कई कवियों को प्रेरित किया है। इन कवियों ने महाराणा प्रताप की प्रशंसा में कई वीर गीतों और फुटकर रचनाओं को प्रस्तुत किया है। तत्कालीन परिस्थिति का चित्रण करते हुए बीकानेर-महाराज कविवर पृथ्वीराज ने कहा है—

घर वांकी दिन पाधरा, मरद न मूके माण।
घणां नरिंदा घेरियो, रहे गिरंदा राण ॥१॥

धरती बहुत विकट है और दिन अनुकूल है इसलिए शूरवीर राणा प्रताप अपना मान नहीं छोडते हैं। वह राणा कई राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में रहता है।

एकण वाडै वाडिया, सह गावडियां साथ।
टांडे सांड प्रतापसी, राण न मानी नाथ ॥२॥

अकबर ने अन्य गाय रूपी राजाओं को एक ही साथ बाड़े में डाल दिया किन्तु राणा प्रताप रूपी सांड नाक में डाली जाने वाली नाथ को नहीं मान कर टांडता रहता है।

इसी प्रकार मुगल-दरबार के प्रधान राजस्थानी कवि दुरसाजी ने भी अकबर की प्रशंसा नहीं करते हुए महाराणा प्रताप की सुयश-पताका लहराई है—

अकबर पथर अनेक, के भूपत भेला किया।
हाथ न लागो हेक, पारस राण प्रतापसी ॥१॥

अकबर ने पत्थरों की तरह कई राजाओं को अपने दरबार में एकत्रित कर लिया है किन्तु पारस की तरह राणा प्रताप उसके हाथ में नहीं आया।

अकबरिये इक वार, दागल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, रहियो राण प्रतापसी ॥२॥

अकबर ने एक ही बार सारे संसार को दाग लगा दिया। बिना दाग के सवार एक मात्र राणा प्रताप ही रहे।

थिर नृप हिन्दुसथान, लातरगा मग लोभ लग।
माता भूमी मान, पूजै राण प्रतापसी ॥३॥

हिन्दुस्थान के स्थिर स्वार्थी राजा लोभ के रास्ते में लग कर पथ-भ्रष्ट हो गये किन्तु राणा प्रताप भूमि को माता मान कर पूजते हैं।

अकबर जतन अपार, रात दिवस रोकण करे।
पूगी समंदां पार, पंगी राण प्रतापसी ॥४॥

अकबर महाराणा प्रताप की कीर्ति को रोकने के लिये रात-दिन भरसक प्रयत्न करता है किन्तु उसकी कीर्ति समुद्र-पार पहुंच चुकी है।

करे कुसामद कूर, करे कुसामद कूकरा।
दुरस कुसामद दूर, पूरख अमोल प्रतापसी ॥५॥

खुशामद दुष्ट करते हैं और कुत्ते भी खुशामद करते हैं किन्तु दुरसा कवि कहता है कि वह स्वयं खुशामद से दूर है। वास्तव में महाराणा प्रताप महान पुरुष हैं।

महाराणा प्रताप का निरंकुश शासन और मेवाड़ की स्वाधीनता सम्राट अकबर जैसा कुशल और शक्तिशाली शासक कैसे देख सकता था? एक एक कर सभी भारतीय नरेश अपनी और अपने देश की स्वाधीनता छोड़ कर अकबर की शरण में सुख-विलास का जीवन व्यतीत करने लगे थे किन्तु महाराणा प्रताप पहाड़ों में घूमते हुए मेवाड़ को सुसंगठित करने का प्रयत्न कर रहे थे। मेवाड़ के राजपूत सरदारों ने ही राणा प्रताप को मेवाड़ का महाराणा घोषित किया था इसलिये महाराणा प्रताप विश्वासपात्र सरदारों और जनता के सहयोग से अपनी शक्ति बढाने में व्यस्त थे। महाराणा प्रताप की स्वाधीनता से आतंकित हो कर अकबर ने अपने कई दरबारियों को उनसे बातचीत के लिये भेजा किन्तु महाराणा किसी भी शर्त पर झुकने के लिये नहीं तैयार हुए। अकबर के दरबारी राजाओं से राणा प्रताप ने कहा—

गीत छोटो साणोर

हाथी बंध बगा हैमर बंध,
कसूं हजारी गरव करो ?
पातल राणा हंसे त्यां पुरसां,
भाड़े महलां पेट भरो ॥
सिंधुर किसा किसा तो माहण,
सोना किसा किसा सर सूत ?
साह सबल ले अबल समापो,
राणो कहे किसा रजपूत ?
बाजा किसा किसा त्यां बाजंद,
मदझर किसा, किसा त्यां मान ?
पत गहलोत न गिणे सुपहां,
नर ते असुर किया नर मान ।
सांगा हरा साह अकबर सूं,
सींग खड़ा कमुद्द उग माय ?
पत सीसोद न माने सुपहां,
धी तिय ले पग लागे धाय ॥

बहुत हाथियों और घोड़ों को बांधने वाले हजारी मन्सबदारों ! तुम कैसे गर्व करते हो ? तुम तो किराये पर महलों में पेट भरते हो । ऐसे पुरुषों पर राणा प्रताप हंसता है । कैसे हाथी, कैसा शासन, कैसा सोना और कैसी तुम्हारे सर की पगड़ी ? अर्थात् राणा कहता है कि वे कैसे क्षत्रिय जो सबल बादशाह के मांगने पर स्त्रियां समर्पित कर देते हैं ? अर्थात् ऐसे लोग क्षत्रिय नहीं हैं । कैसे बाजे-गाजे, कैसे उनके घोड़े, कैसे हाथी और कैसा उनका मान ? गुहिलोतपति राणा प्रताप उन लोगों को राजा नहीं मानता जिन्होंने असुर का शासन मान लिया । सांगा का पौत्र राणा प्रताप साह अकबर के सामने सिंह की भांति खड़ा है और मुसलमान उसके सामने तलवार कैसे पकड़ सकता है ? जो लड़की और स्त्री के साथ दौड़ कर बादशाह के पैरों लगते हैं, शिशोदिया पति राणा प्रताप उन्हें राजा नहीं मानता ।

राणा प्रताप और उनके साथियों के लिये व्यक्तिगत सुख स्वातंत्र्य का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता और मान-मर्यादा की रक्षा करने का था । इसलिये सम्राट अकबर की भेद नीति और कुशलता महाराणा प्रताप को झुकाने में सर्वथा असमर्थ रही । अकबर की सैनिक शक्ति को महाराणा

प्रताप और उनके साथी भली-भांति जानते थे किन्तु कौन स्वाभिमानी शूरवीर दासता का सर्वथा पतित जीवन स्वीकार कर सकता था? फिर अजेय जन-बल महाराणा के साथ था और थी ऊपजाऊ घाटियों, सुविस्तृत जलाशयों, वेगवती नदियों, गिरि-कन्दराओं तथा सुदृढ़ दुर्ग प्राचीरों से अलंकृत मेवाड़ की शस्यश्यामला धरती, जिसके मध्य से भारत के दो प्रधान राज-मार्ग बादशाही धन-वभव से प्रवाहित होते हुए सुदूर समुद्री बन्दरगाहों और विदेशों तक पहुंचते थे।

फिर महाराणा प्रताप, और उनके साथियों को बढ़ावा देने वाले कवियों की कमी नहीं थी। महाकवि दुरसा ने महाराणा प्रताप को युद्ध के लिये बढ़ावा देते हुए लिखा—

वसुधा किय विख्यात, समरथ कुल सीसोंदिया।
रांणा जसरी रात. प्रगट्यो भलां प्रतापसी ॥१॥

हे महाराणा प्रताप, आपने जिस शूरवीर कुल में जन्म लिया उसको सारे संसार में प्रसिद्ध कर दिया। राणा प्रताप, यश की रात में आपका जन्म शुभ है।

जिणरो जस जग मांहि, जिणरो जग धन जीवणो।
नेडो अपजस नांहि, पणधर धिनो प्रतापसी ॥२॥

जिनका सारे संसार में यश है, उन्हीं का जीवन धन्य है। महाराणा प्रताप प्रण के धनी हैं और उनके समीप अपयश नहीं पहुंचा है।

अजरामर धन एह, जस रह जावे जगत में।
दुख सुख दोनूं देह, सुपन समान प्रतापसी ॥३॥

संसार में अजर और अमर धन यश ही है और यही मृत्यु के बाद रह जाता है। महाराणा प्रताप, शरीर के लिये सुख-दुख स्वप्न की भांति हैं—

गौहिल कुल धन गाढ, लेवण अकबर लालची।
कोड़ी दे नहं काढ, पणधर राण प्रतापसी ॥४॥

लालची अकबर गुहिलोत-कुल के सुरक्षित धन को लेने की बहुत इच्छा करता है किन्तु प्रणवीर महाराणा प्रताप एक कोड़ी भी निकाल कर नहीं देता है।

मेवाड़ में महाराणा प्रताप के कुशल नेतृत्व में वारु ढोल बज उठे, रण नक्कारे गड-गडाने लगे और रणसिंघ वीरों का आह्वान करने लगे। चारण कवियों ने अपनी ओजमयी वाणी से जनता को मातृभूमि और अपनी मान-मर्यादा के लिये मर-मिटने के लिये तैयार किया। मेवाड़ की जनता पहाड़ी भागों में संगठित हो गई। घर-घर युद्ध की तैयारी होने लगी।

और एक दिन महाराणा प्रताप और उनके साथी हल्दी घाटी में मोर्चा लिये हुए सम्राट अकबर की सुविशाल और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित सेना को मार भगाने की प्रबल लालसा से उतावले होकर प्रबल वेग से चल पड़े।

हल्दी घाटी के रणक्षेत्र में एक ओर मुगल सम्राट अकबर की विशाल सेना थी, जिसमें सीकरी के शूरवीर कहे जाने वाले शेखजादे और अकबर की कूटनीति से प्रभावित हुए कुछ राजपूत भी थे जिनके पूर्वजों ने महाराणा सांगा के सामन्तों की भांति मेवाड़ के केसरिया झन्डे के नीचे एकत्रित होकर मुगल राज्य के संस्थापक बाबर से लोहा लिया था।

दूसरी ओर महाराणा प्रताप के मुट्ठी भर किन्तु चुने हुये राजपूत और भील थे जिनका सेनापति हकीम शूर अफगन था। इस प्रकार यह एक राष्ट्रीय युद्ध था। युद्ध के प्रारम्भ में ही महाराणा प्रताप ने बाज पक्षी की भांति मुगल सम्राट अकबर की सेना पर ऐसी तीव्रता से आक्रमण किया कि शत्रु के पांव उखड़ गये। इस आक्रमण का वर्णन चारण कवि सांदू मालाजी ने अपने गीत में इस प्रकार किया है—

किलम लाख केकाण गज खंभ छेडे कुमंक,
वाजरे पंख बलदाव दलीयो।
आम खुमाणचा मान ओहडतां,
गुरड अकबर तणो गलीयो ॥१॥
फोज बाजू तुरी गयंद दामण फिरे,
पाण सूं पडे परियाण पाको।
पात ब्रह्मंडचा पार लाधा पखे,
थाग दल विहंग सुरताण थाको ॥२॥
दल सबळ खाग भड़ पंख वल दाखवे,
फोरपण नीगमे पडे फीको।
ऊदवत गयण पुड़ जच आणती,
सीकरी सुपह धक पंख सीको ॥३॥
हीये बल दाखव वाज घीरो हुओ,
सारखां वडो पर हंस सहीयो।
'विहद आकासपुड़ राण पोरस विहद,
रोद पंख राव हद मांहि रहीयो ॥४॥

मुसलमान बादशाह ने क्रोधित होकर एक लाख घोड़ों और हाथियों को खंभों से खोलकर छोड़ा। इस भारी सेना में राणा प्रताप अपने बल से बाज पक्षी

के समान प्रविष्ठ हुआ। राणा प्रताप के आकाश मार्ग से पक्षी के समान झपटने पर गरुड़ रूपी अकबर का गर्व नष्ट हो गया।

हाथी घोड़ों की सेना घेरा डाल कर चक्कर लगाती रही और राणा उस पर अपने साहस से प्रयाण कर टूट पड़ा। सुलतान का विहंग रूपी सेना दल प्रताप रूपी ब्रह्मांड का पार लगाता हुआ थक गया। सबल सेना को पंख रूपी तलवार का बल बताया जिससे उसका हल्कापन और भी तेजरहित हो गया। उदयसिंह के पुत्र राणा प्रताप ने आकाश-मार्ग से आकर सीकरीपति को अपने पंख-बल से स्तंभित कर दिया। हृदय में अपने बल का अनुमान कर बाज रूपी प्रताप ने धीरज धारण किया और बड़ों के समान सहनशीलता सहन की। असीम आकाश के समान राणा का पौरुष भी असीम रहा किन्तु मुसलमान रूपी गरुड़ अपनी सीमा में ही रहा।

इस प्रकार महाराणा प्रताप के पहिले ही आक्रमण में मुगल सेना भाग निकली और इतिहासकार अलबदायूनी को भी लिखना पड़ा —

"हमारी जो फौज पहिले हमले में ही भाग निकली थी, नदी को पार कर ५–६ कोस तक भागती ही रही।"

महाराणा प्रताप ने वीरता पूर्वक लड़ते हुये मुगल सम्राट की सेना में प्रलय मचा दिया था। स्वयं अलबदायूनी कहता है—

"राणा कीका के सैन्य के दूसरे भाग ने, जिसका संचालक राणा स्वय था, घाटी से निकलकर घाटी के द्वार पर जमे हुये काजीखां के सैन्य पर हमला किया और उसका संहार करता हुआ वह मध्य तक पहुंच गया, जिससे सबके सब सीकरी के शेखजादे भाग निकले।"

कविवर पृथ्वीराज के शब्दों में महाराणा प्रताप की वीरता देखिये—

वाही राणा प्रतापसी, वरछी लच पच्चांह।
जाणक नागण नीसरी, मुंह धरियां वच्चांह ॥१॥

महाराणा प्रताप ने तेजी से चलने वाली बरछी शत्रु पर चलाई। वह मांस के साथ इस प्रकार निकली मानो सर्पणी अपने मुंह में बच्चे लिये हुए निकली हो।

पातल चड़ पहसाहरी, राण विधूंसी त्राण।
जाण चढ़ी कर बंदरा, पोथी वेद पुराण ॥२॥

महाराणा प्रताप ने चढ़ाई कर बादशाह की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया मानों बंदरों के हाथ में वेद-पुराण की पुस्तक पड़ गई हो।

वाही राणा प्रतापसी, बगतर में वरछीह।
जाणक झींगर जाल में, मुंह काढ्यो मच्छीह ॥३॥

महाराणा प्रताप ने शत्रु के वख्तर पर बरछी का वार किया। ऐसा दिखाई दिया मानों कांई के जाल में मछली ने मुंह निकाला हो।

हल्दीघाटी के युद्ध में महाराणा प्रताप लड़ते-लड़ते ओर वीर मुगल सेना का संहार करते हुये अपने चेतक घोड़े पर बहुत आगे निकल गये। इस प्रकार वे चारों ओर से मुगल-सेना से घिर गये और हजारों मुगल राणा प्रताप पर टूट पड़े। महाराणा प्रताप भी अकेले ही शूरवीरता से लड़ते हुये उनका संहार करने लगे। महाराणा प्रताप को संकट में देख झाला मान ने राज्यचिन्ह धारण कर शूरवीरता से लड़ना प्रारम्भ किया, जिससे सभी मुगल सैनिकों का ध्यान इनकी ओर आकर्षित हो गया। झाला मान ने अपने प्राणों को मातृभूमि की बलिवेदी पर न्यौछावर कर दिये और महाराणा प्रताप की रक्षा की। इस विषय से बीसाऊ, जयपुर के सुप्रसिद्ध राजस्थानी कवि डॉ० मनोहर शर्मा ने लिखा है—

धर्म को पूत ज्यूं मान झालो खड्यो,
सकत वरदान रणसूर पूरो।
नेण की जोत सूं प्राण जाग्या खरा,
प्राण की जोत सूं रूप खरो ॥
सांच के आंच ज्यूं काट कंचन चढे,
धरां सूं धरम क्यों लोप होवे।
पुत्र परताप को रूप क्यूं वीसरे,
मान क्यूं यां च्यानणो वाज खोवे।
वेग सूं राज को छत्र धर सीस मित्र,
जुद्ध की लाय सूं सिंघ काढ्यो।
सकत सिणगार को रूप रूरो भयो,
समद को नीर मरजाद दीप्यो भलो,
भगत भगवान को भेस धार्यो।
सकत पूजा खरी सिध झालो करी,
धरम को अणसर्यो काज सार्यो।
सार सनमान सूं देव-पूजा करी,
हाथ सूं अमर फल आप चाख्यो।
दीप निरवाण कर,जोत राखी सजग,
सीस निज सूंप कर सार राख्यो।

धर्म पुत्र झाला मान शक्ति के वरदान को धारण कर शूरवीरता पूर्वक युद्ध भूमि में खड़ा है। उसके नयनों की ज्योति में उसके प्राण जाग उठे हैं और प्राणों की ज्योति से उसका मुख-मंडल सीधा हो गया है। सांच को आंच नहीं लगती और कन्चन को जंग नहीं लगता। इसी प्रकार धरती से धर्म का लोप कैसे हो सकता है? महाराणा प्रताप अपने पुण्य को कैसे छोड़ सकते हैं और मानसिंह अपनी चमक को कैसे दूर कर सकता है? मानसिंह ने तेजी से राजछत्र को अपने मस्तक पर धारण कर लिया और युद्ध की अग्नि से महाराणा प्रताप रूपी सिंह को निकाल दिया। शक्ति का शृंगार निखर उठा और समुद्र का पानी अपनी मर्यादा में सुशोभित हुआ। भक्त ने भगवान का वेष धारण किया और सिंह झाला ने शक्ति की सच्ची पूजा की। उसने धर्म का कठिन कार्य पूरा किया। सार सम्मान सहित देव पूजा की और अपने हाथ से अमर फल का स्वाद लिया। झाला मान ने अपने प्राणरूपी दीप का निर्वाण कर संसार में यश स्थिर किया और अपना मस्तक दे कर पुण्य-लाभ लिया।

हल्दीघाटी के युद्ध में मुगल सेना महाराणा प्रताप को अपने वश में नहीं कर सकी और अकबर ने क्रुद्ध होकर आक्रमण और प्रत्याक्रमणों का तांता लगा दिया। अकबर ने मानसिंह, शाहबाज खां, मिरजा खां, जगन्नाथ कछवाहा आदि सेनापतियों को बड़ी-बड़ी सेनाओं के साथ भेजा किन्तु उनमें से कोई भी महाराणा प्रताप को नहीं झुका सका। चारण कवि जाडा महडू ने अपने गीत में बताया है कि अकबर की सेनायें प्रचुर धन से जुटाई जाती थी किन्तु जंगली फल खाने वाले राणा प्रताप उनको मार भगाते थे—

लख जूटे मीर स खूटे लोहे,
लख द्रव कोडि भंडार लाई।
अकबर वरतण दिये ऊबरां,
पातल राणा तणै पसाइ ॥१॥
मेल्हे फौज स फौज मारीजै,
मेल्हि बीया भड़ करे मंडाण।
खोंद तणा लसकर द्रव खाये,
खडग पसाह तूझ खुमाण ॥२॥
आवे थाट स थाट आवटे,
अनि अनि मेल्हे खदे अपार।
असपति गरथ दिये उलगाणा,
असिमर रान तणां उपगार ॥३॥

मुज भाजीये जेम करि मारथ,
मुज पूजिये जेम माराथि।
होवे मुगति मुगति फल होवे,
हींदुवा राण तुहारे हाथि ॥४॥

जिन लाखों मुसलमानों को लाखों-करोडों रुपयों के भण्डार से जुटाया वे तलवार से मारे गये। इधर राणा प्रताप को तो अकबर ने केवल 'ऊमरे' जंगली फल ही खाने को दिये। जो सेना भेजी जाती है वह मारी जाती है। फिर दूसरी सेना भेजी जाती है तो राणा पुनः युद्ध प्रारंभ करता है। खुमाण राणा प्रताप, तेरी तलवार के कारण ही मुसलमान सेना को द्रव्य खाने को मिलता है। सेना आती है, वह मारी जाती है। अकबर दूसरी २ अपार सेनाएं भेजता है, किन्तु वे सब खप जाती हैं अर्थात् मारी जाती हैं। राणा प्रताप की तलवार के उपकार से बादशाह बिना काम ही धन देता है। मुसलमान भुजाएं टूट गई हों इस प्रकार युद्ध करते हैं एवं राणा तेरी भुजाएं पूजने योग्य हैं। हिन्दू राणा, तुम्हारे हाथ से शत्रुओं की मुक्ति होती है और उनको भक्ति का फल मिलता है।

मेवाड़ में आने वाले आक्रमणकारियों का महाराणा प्रताप ने कितनी शूरवीरता से विनाश किया, उसका वर्णन एक चारण कवि ने अपने गीत में किया है। इसमें बताया गया है कि अकबर बराबर सेनाएं भेजता है और महाराणा प्रताप उनका शूरवीरता से विनाश कर देते हैं। विधाता को सृष्टि-निर्माण में कठिनाई होती है—

केता एक घड़ूं सामलो केशव,
कथन विधाता एम कहे।
अकबर दल नह रहे आवता,
राणो नह मारतो रहे ॥१॥

घणां सोहड़ विधाका घडि घडि,
फेरे किशन तणां फुरमाण।
थाट रोद आवता न थाके,
रिण रहचतो न थाके राण ॥२॥

किम अथ चले कहे ब्रह्मा कथ,
ए हथ अनंत चलावो आप।
अकबर सेन तेतला आवे,
पिंड तेता निरदले प्रताप ॥३॥

चासुर निस घड़े थकी विधाता,
वले विथाका किशन विमेख ।
आवे जिता तिता उदावत,
अणमारिया न मेले एक ॥४॥

विधाता इस प्रकार कहते हैं—केशव सुनो, मैं कितने मनुष्यों को बनाऊं ? क्योंकि अकबर के दल मेवाड़ में आते हुये नहीं रुकते और राणा उनको मारते हुए नहीं रुकता । फिर कृष्ण के आदेशानुसार विधाता बहुत से वीरों को बनाते-बनाते थक गये क्योंकि मुसलमानों के समूह आते हुए नहीं थकते और राणा युद्ध करता हुआ नहीं थकता । ब्रह्माजी कहते हैं कि अब मेरे हाथ थकावट के कारण कैसे चलें ? अब तो आप अपने अनंत हाथ चलाइये क्योंकि अकबर की सेना के जितने लोग आते हैं उतने के शरीरों को प्रताप काट देता है । विधाता रात-दिन मनुष्यों को घड़ते हुए थक गये और फिर कृष्ण भी बनाते हुए थक गये । उदयसिंह का पुत्र राणा प्रताप जितने सैनिक लड़ने के लिए आते थे, उनमें से एक को भी जीवित नहीं छोड़ते ।

महाराणा प्रताप ने कई वर्षों तक शूरवीरता से आक्रमणकारियों का सामना किया और अपनी स्वाधीनता की रक्षा की । इस प्रकार महाराणा प्रताप ने सारे संसार को स्वाधीनता का पाठ पढ़ाया ।

महाराणा प्रताप कई वर्ष तक अकबर से संघर्ष करते रहे । महाराणा प्रताप और उनके साथियों ने भूखे-प्यासे रह कर कई संकटों का सामना किया किन्तु कभी अकबर की आधीनता नहीं स्वीकार की । महलों में आनन्द से रहने वाले राज-परिपार में पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को पेट भर रोटी प्राप्त करने में भी कठिनाई होने लगी किन्तु अपनी स्नाधीनता पर अडिग रहने वालों ने सभी संकट प्रसन्नता से सह लिये । इस विषय में महाकवि दुरसा आढ़ा कहते हैं—

अकबर हिये उचाट, रात दिवस लागी रहे ।
रजवट वट समराट, पाटण राण प्रतापसी ॥२॥

अकबर के हृदय में रात-दिन उद्विग्नता रहती है कि राणा प्रताप रजवट-वट रूपी साम्राज्य पर छाये रहता है ।

चित्त मरण रण चाय, अकबर आधीनी विना ।
पराधीन दुख पाय, पुनि जीवं न प्रतापसी ॥२॥

महाराणा प्रताप स्वाधीन रहकर युद्ध-भूमि में मरने की चाहता करते हैं किन्तु पराधीनता रूपी दुख प्राप्त कर जीवित नहीं रहना चाहते हैं ।

अकबर दल अप्रमाण, उदेनयर घेरे अनय।
मांगा बल खूमाण, साहां दलण प्रतापसी ॥३॥

अकबर के अनेकों दल अनीतिपूर्वक उदयपुर को घेरे रहते हैं किन्तु यशस्वी महाराणा प्रताप अपनी तलवार के बल से बादशाह के दलों को नष्ट कर देते हैं।

भागे भागे भाम, अमृत लागे ऊमरा।
अकबर तल आराम, पेखे जहर प्रतापसी ॥४॥

महाराणा प्रताप जनाने सहित भागते रहते हैं और उनको जंगली फल ऊमरे भी अमृत लगते हैं। महाराणा प्रताप अकबर की अधीनता में प्राप्त होने वाले आराम को विष के रूप में देखते हैं।

इस प्रकार देशप्रेम की बलिवेदि पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर अपनी स्वाधीनता बनाये रखने से देश के कई कवि प्रभावित हुए। महाराणा प्रताप अकबर के दरबार में कभी नहीं गये, उन्होंने अकबर से विवाह-सम्बन्ध नहीं किया, अकबर को कोई भेंट नहीं दी और अकबर का विरोध करते हुए उसकी नींद हराम करदी जिससे भारत के सभी स्वाधीनता-प्रेमियों ने महाराणा की बड़ी प्रशंसा की। एक अज्ञात चारण कवि ने अपने गीत में कहा है—

गढ़पति गांजले महिपती भेलीजै,
धुर अकबर रै मांडे।
उदयासिंघ तणो अतुली बल,
चेहरे चढ्यो न चाडे ॥१॥

माथर चौकी तणों न मूतो,
दिन न हुओ दरबारी।
मेछांरी मजलस मेवाड़ो,
हुओ न राण हजारी ॥२॥

हैंवर गैंवर हेम हुरम्मा,
धरी न आड़ी धीया।
अकबर साह तणां दल आगल,
नजर गुजार न किया ॥३॥

मेछां मिलणपो मेटे,
पातल आयो पाणे।
साहां साह दियण सांगाहर,
राह विलूंधा राणे ॥४॥

राणा प्रताप ने कभी नहीं डिगने वाले अकबर के युद्ध में गढपतियों का गंजन और राजाओं का मर्दन किया, उदयसिंह के पुत्र राणा प्रताप ने अपने अतुलित बल एवं पुरुपार्थ से सब को छकाया। राणा प्रताप कभी बादशाह की शयन चौकी पर नहीं सोया और न किसी दिन दरबार में सम्मिलित हुआ। मेवाड़ नरेश म्लेच्छों की मजलिस में कभी हजारी मनसबदार नहीं हुआ। राणा प्रताप ने कभी श्रेष्ठ घोड़े, हाथी, सुवर्ण, रानियों और पुत्रियों को सामने नहीं रक्खा। अकबर बादशाह के दल के सामने कभी 'नजर गुजार' नहीं किया। राणा प्रताप ने साहस धारण कर म्लेच्छों से मिलना बन्द कर दिया। बादशाह को दाह देने वाले सांगा के पौत्र राणा प्रताप ने उसके रास्ते बंद कर दिये।

कई वर्षों के अनवरत स्वाधीनता-संघर्ष के बाद कुछ लोगों ने समझा महाराणा प्रताप अब अकबर की आधीनता स्वीकार कर लेंगे। अकबर के सामन्त कविवर पृथ्वीराज ने कहते हैं अपनी शंका दूर करने के लिये महाराणा प्रताप को लिखा—

पातल जो पतसाह, बोले मूख हूंता वयण।
मिहर पछम दिस मांह, उगे कासप राव उत ॥१॥

महाराणा प्रताप अपने मुंह से अकबर को बादशाह कह दें तो सूर्य पश्चिम दिशा में उदय होने लगे।

पटकूं मूंछांपाण, पटकूं निज तन करद।
दीजै लिख दीवाण, इण दो महली बात इक ॥२॥

हे एकलिंग के दीवान महाराणा प्रताप, मैं अपनी मूंछों पर बल देता रहूं अथवा अपने सिर के दो टुकड़े कर दूं। इन दो बातों में से एक बात लिख दीजिये।

तुरन्त ही महाराणा प्रताप ने लिख भेजा—

तुरक कहासी मुख पते, इण तन सू इकलिंग।
ऊगे ज्यांही ऊगसी, प्राची बीच, पतंग ॥१॥

एकलिंग का नाम लेकर कहता हूं कि प्रताप के मुंह से अकबर तुर्क ही कहा जावेगा और सूर्य पूर्व दिशा में जहां उदय होता है, वहीं उदय होता रहेगा।

खुसी हूंत पीथल कमध, पटको मूंछां पाण।
पछटण है जेते पतो, कलमा सिर केबाण ॥२॥

राठौड़ वीर पृथ्वीराज, जबतक प्रताप की तलवार विदेशियों के मस्तक पर है, तब तक आप बड़ी प्रसन्नता से अपनी मूंछ पर बल देते रहें।

सांग मूंड सहसी सको, सम जस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतौ भला, बेण तुरक सूंवाद ॥३॥

महाराणा प्रताप अकबर के दरबारी मान को जहर की भांति समझ कर तलवारों के सभी प्रहार सहन करते रहेंगे और हे शूरवीर पृथ्वीराज ने आप अवश्य ही तुर्क अकबर से विवाद में विजयी बनें।

महाराणा प्रताप और महाराजा पृथ्वीराज के इसी पत्र व्यवहार को सुप्रसिद्ध राजस्थानी कवि श्री कन्हैयालाल सेठिया ने इस सुन्दर रूप में प्रकट किया है—

म्हें आज सुणी है, नाहरियो
स्यालां रे सागे सोवेलो।
म्हे आज सुणी है, सूरजड़ो,
बादल री ओटां खोवेलो॥

म्हे आज सुणी है, चातकड़ो
धरती रो पाणी पीवेलो।
म्हें आज सुणी है, हाथीड़ो
कूकर री जूणां जीवेलो॥

म्हे आज सुणी है, थकां खसम
अब रांड हुवेली रजपूती।
म्हे आज सुणी है, म्यानां में
तरवार रेवेली अब सूती॥

तो म्हांरो हिवड़ों कलपे हैं
मूंछ्या री मोड़ मरोड़ गयी।
पीथल ने, राणा लिख भेजो
आ बात कठे तक गिणाँ सही?

पीथल रा आखर पढ़तां ही
राणा री आंख्यां लाल हुई।
धिक्कार मने हूं कायर हूं
नाहररी एक दकाल हुई॥

हूं भूख मरूं, हूं प्यास मरूं
मेवाड़ धरा आजाद रवे।
हूं घोर ऊजाड़ां में भटकूं
पण मनमें मां री याद रवे॥

हूं रजपूतण रो जायो हूं
रजपूती करज चुकाऊंला।

ओ सीस पड़े, पण पाघ नहीं
दिल्ली रो मान झुकाऊंला ।।

पीथल के खिमता बादल री
जो रोके सुर उगाली ने।
सिंघां री हाथल सह लेवे
वा कूख मिली कद स्याली ने ।।

धरती रो पाणी पिये, इसी
चातक री चूंच बणी कोनी।
कूकर री जूंणा जिये, इसी
हाथी री बात सुणी कोनी ।।

आ हाथां में तरवार थंका
कुण रांड लेवे है रजपूती ?
म्यानां रे बदले वेर्‌यांरी
छात्यां में रेवेली सूती ।।

मेवाड़ धधकतो अंगारो
आंध्या में चमचम चमकेलो।
कढखे री उठती तानां पर
पग पग पर खांडो खड़केलो ।।

राखो थे मूंछ्यां मोड्‌योड़ी
लोही री नदी बहा द्यूलां।
हूं तुरक कहूंला अकबर ने
उजड्‌यो मेवाड़ बसा द्यूलां ।।

मैंने आज सुना है कि सिंह सियार के साथ सोयेगा। मैंने आज सुना है कि सूरज बादल की ओट में छिप जावेगा।

मैंने आज सुना है कि चातक आज धरती का पानी पीवेगा। मैंने आज सुना है कि हाथी कुत्तों का जीवन व्यतीत करेगा।

मैंने आज सुना है कि राजपूती अपने स्वामी के होते हुए विदा हो जावेगी मैंने आज सुना है कि तलवार म्यान में ही रहेगी।

तो मेरा हृदय कांपता है और मूंछों की मोड़-मरोड़ चली गई है। हे राणा, पृथ्वीराज को लिखिये कि यह कहां तक सही है ?

पीथल के पत्र को पढ़ते ही राणा की आंखें लाल हो गई और वे कहने लगे "यदि मैं कायर हूं तो मुझे धिक्कार है" और उन्होंने सिंह की भांति गर्जना की।

महाराणा कहने लगे मैं भूखा रहूं, प्यासा रहूं किन्तु मेवाड़ की धरती स्वतन्त्र रहे। मैं घोर जंगल में भटकता रहूं किन्तु मन में सदा ही मां की याद रहे।

मैं राजपूतनी का लड़का हूं और राजपूती का कर्ज चुकाऊंगा। यह शीश कटेगा किन्तु अपनी पाग नहीं झुकेगी। दिल्ली मान को झुकाऊंगा।

हे पृथ्वीराज, बादल की क्या क्षमता है कि वह सूर्य के प्रकाश को रोक सके। सियारों के जाये में सिंहों के पंजों का प्रहार सहने की शक्ति कहां है?

चातक की चोंच ऐसी नहीं बनी है कि वह धरती का पानी पीवे। हाथी की जाति ऐसी नहीं सुनी है कि वह कुत्तों की तरह जीवन व्यतीत करे।

इन हाथों में तलवार रहते हुए राजपूती को कौन विधवा कह सकता है? मेरी तलवार म्यान के बदले शत्रुओं के सीनों पर सोई रहेगी।

मेवाड़ धधकते हुए अंगारे की तरह आंधियों में चम-चम चमकेगा। वीर गीतों की उठती हुई तानों पर पग-पग पर खाण्डा बजेगा।

पृथ्वीराज आप अपनी मूंछों को मरोड़ी हुई ही रखिये। लोहू की नदी बहा दूंगा। मैं अकबर को तुर्क ही कहूंगा और अपनी शक्ति से उजड़े हुए मेवाड़ को फिर से बसा दूंगा।

महाराणा प्रताप और उनके शूरवीर साथियों के स्वाधीनता-संघर्ष में नया जोश उमड़ आया। उन्होंने छापे मार कर एक के बाद एक किलों को मुगलों के अधिकार से छुड़ा लिया और फिर भारत-मुकुट महादुर्ग चितौड़ को लेनेका प्रयत्न करने लगे।

किन्तु इसी समय महाराणा प्रताप का अन्त समय समीप आ गया। वर्षों के स्वाधीनता-संघर्षों से थका हुआ महाराणा का शरीर मृत्यु-शैय्या पर था। चितौड़गढ़ से महाराणा अभी तक मुगलों का अधिकार नहीं हटा सके थे, जिसकी उनको असीम वेदना हो रही थी। महाराणा प्रताप चितौड़ की स्वाधीनता के लिये मृत्यु-शैय्या पर पड़े छटपटा रहे थे। महाराणा प्रताप के प्राण ऐसी दुखी अवस्था में उनके शरीर को छोड़कर निकलना नहीं चाहते थे।

संघर्षों में साथ रहने वाले सरदार चारों ओर खड़े थे। स्थिति की गंभीरता का अनुभव करते हुए सरदारों ने महाराणा के मन की बात पूछी।

महाराणा ने असीम दुख से आंसू भर कर कहा, चितौड़ को स्वाधीन बनाने का मेरा स्वप्न अभी तक साकार नहीं हुआ। उसके बिना मैं कैसे मर सकता हूं?

मेवाड़ के देश-भक्त सरदारों ने एक के बाद एक महाराणा के चरणों को छूते हुए शपथ ली, जब तक हमारा चितौड़ स्वाधीन नहीं होगा, हम सुख की सांस नहीं लेंगे और हमारा स्वाधीनता का संघर्ष पीढी दर पीढी चालू रहेगा। हम मरेंगे, मिटेंगे किन्तु चितौड़ को स्वाधीन करेंगे।

महाराणा प्रताप के स्वाधीनता-संघर्ष में शहीद होने के समाचार अकबर के दरबार में पहुंचे। चारों और दुख का वातावरण छा गया। तब अकबर के हार्दिक दुख को देखते हुए महाकवि आढ़ा दुरसा ने कहा—

अस लेगो अण दाग, पाघ लेगो अणनामी।
गो आड़ा गवडाय, जिको वहतो धुर वामी॥
नव रोजे नहं गयो, न गो आतसां नवल्ली॥
न गो झरोखां हेठ, जेठ दुनियाण दहल्ली॥
गहलोत राण जीति गयो, दसण मूंद रसणा डसी॥
नीसास मूक भरिया नयण, तो मृत शाह प्रतापसी॥

महाराणा प्रताप का घोड़ा अकबर के दरबार में कभी दागा नहीं गया और महाराणा प्रताप ने अकबर के सामने कभी अपनी पाघ नहीं झुकाई। वह अपने वांए हाथों के बल से ही लड़ते रहे और अपने यश-गीत गवा कर गये। महाराणा प्रताप कभी नौरोज के मैले में नहीं सम्मिलित हुये और न दिल्ली-सम्राट के आंगना में ही गये। महाराणा प्रताप कभी बादशाह के झरोखे के नीचे नहीं आये जहां सारी दुनियां कांपती है। गुहिलोत राणा प्रताप वास्तव में विजयी हुए हैं उनके मरने पर बादशाह अकबर ने भी मूक हो कर दांत भींचते हुए निश्वास डाले हैं और अपनी आंखों में आंसू भरे हैं।

हमारे स्वाधीनता-संग्राम में जूझने वाले शूरवीरों ने चितौड़ को स्वाधीन करने का संघर्ष अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार चालू रक्खा। सैकड़ों वर्षों तक हमारी स्वाधीनता का यह संघर्ष चलता रहा। संघर्ष का रूप बदला किन्तु स्वाधीनता-प्रेमी अपनी आन पर डटे रहे।

—:o:—

: ८ :

महाकवि सूर्यमल

अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर लेने से राजस्थान के नरेशों को किसी बाह्य आक्रमण की चिन्ता नहीं रही और राज्यों का शासन-प्रबन्ध भी अंग्रेज सरकार द्वारा नियुक्त दीवानों द्वारा होने लगा। इसलिए राजस्थानी नरेश बहुधा निष्क्रिय भी हो गए थे। उनका अधिकांश समय सैर-सपाटे, शिकार और अंग्रेज महाप्रभुओं की चापलूसी में ही व्यतीत होने लगा था। अपने पूर्वजों की शूरवीरता, कष्टसहिष्णुता और त्याग की भावना इनमें नाम मात्र के लिए ही शेष रह गई थी। फिर भी ये अपने पूर्वजों की महानता के अभिमान में डूबे रहते थे। यही अवस्था राजस्थान के छोटे-बड़े जागीरदारों की भी हो गई थी। राजस्थानी जनता में अवश्य ही स्वाधीनता और शूरवीरता की भावना रह गई थी और अंग्रेज सरकार इसको दबाने का प्रयत्न निरन्तर कर रही थी। पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता का विनाशकारी प्रभाव राजस्थानी नरेशों के साथ राजस्थानी जनता पर भी होता जा रहा था। भारतीय स्वाधीनता संग्राम की सवाहिका और भारतीय गौरव-गरिमा की प्रतीक राजस्थानी संस्कृति पर चारों ओर से कुठाराघात हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में और मुख्यतः सन् १८५७ के भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के अवसर पर महाकवि सूर्यमल अवतरित हुए जिन्होंने अपनी बहुमुखी लोकोत्तर प्रतिभा, चारणोचित स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य प्रेम और ओजमयी वाणी से राजस्थान के शासकों को प्रताड़ित कर राजस्थानी जन-शक्ति को स्वाधीनता-संग्राम के लिए संगठित करने का प्रयत्न किया था।

इळा न देणी आपरी, रण खेतां भिड़ जाय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय॥

मां अपने पुत्र को पालने में ही मरने की महत्ता सिखाती हुई कहती है कि हे पुत्र, रणक्षेत्र में भिड़ जाना किन्तु अपनी धरती दूसरों को न देना। प्रेरणादायक यह संदेश प्रदान करने वाले महाकवि सूर्यमल का जन्म चारणों की मिश्रण

शाखा में कार्तिक कृष्ण १ संवत् १८७२ को बूंदी में हुआ था। इनकी काव्य-प्रतिभा बचपन में ही स्पष्ट हो गई थी। युवावस्था में तो राजस्थान ही नहीं, बाहर के भी बड़े-बड़े नरेश महाकवि सूर्यमल के स्वागत-सम्मान को अपना अहोभाग्य मानते थे और बड़े-बड़े उपहार प्रस्तुत कर महाकवि की कृपा-दृष्टि प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे किन्तु महाकवि इनकी विशेष परवाह नहीं करते हुए इन्हें प्रताड़ित ही करते रहते थे। वे कहते थे—

'सींह न बाजो ठाकुरां दीन गुजारो दीह।
हाथल पाडे हाथियां, सो मड़ बाजै सींह॥

ठाकरों, तुम अपने नाम के साथ सिंह मत लगाओ क्योंकि तुम तो दासता में दीन बन कर अपने दिन व्यतीत करते हो। वही शूरवीर सिंह कहा जा सकता है जो अपने पंजे के बल से हाथियों को भी पछाड़ सकता है।

सूंता घर-घर आलसी वृथा गुमावै वेस।
खग धारां घोड़ां खुरां, दाबै अजका देस॥

घर-घर आलसी लोग सोते हुए अपनी आयु व्यर्थ ही नष्ट कर रहे हैं और विदेशी दुष्ट तलवारों की धारों तथा घोड़ों की टापों से देश को दबाते जा रहे हैं।

मूंछ न तोड़ो कोट में, कढियां छौड़े काल।
काला घर चेजौ करे, मूसा पण मूछाल॥

ठाकरों, तुम अपने दुर्गों में चूहे की तरह मूछें मत तोड़ो क्योंकि काले नाग से तो तुम भाग कर नहीं बच सकोगे।। मूछों वाले चूहे की तरह झूठे वीर बन कर तुम काले नाग के पास रहते हो तो उससे कब तक बच सकोगे।

बूंदी नरेश रामसिंह जी महाकवि सूर्यमल की सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखते थे और किसी प्रकार का अभाव कवि को नहीं होने देते थे, किन्तु महाकवि प्रातःकाल भगवान भास्कर से प्रार्थना किया करते थे "एक दिन ऐसा आवे कि महाराज रामसिंह का मुंड घोड़ों की टापों में लुड़कता मिले।" महाराज की नव-विवाहिता राणी जी का महल पास ही था और वह सदा ही महाकवि की कर्कशा वाणी को सुना करती थी। एक दिन राणीजी से नहीं रहा गया और उन्होंने दासी भेज कर महाकवि से पूछताछ की, आप प्रति दिन अपने स्वामी के लिए ऐसी कामना क्यों करते हो? तुरन्त ही सूर्यमल ने उत्तर दिया, यदि ऐसी प्रार्थना भगवान ने स्वीकार कर ली और तुमने भी सहगमन कर अपने कर्त्तव्य का पालन किया तो मैं दोनों को अमर कर दूंगा। महाराज रामसिंह ने भी महाकवि

का समर्थन करते हुए कहा, महावीर क्षत्रिय के लिए युद्ध में मारे जाने के अतिरिक्त सौभाग्य की दूसरी बात क्या हो सकती है ?

महाकवि के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण घटनाएं कही जाती हैं। एक बार महाकवि अजमेर के पास मिनाय ठिकाने में गये। मिनाय-राणीजी ने कई मूल्यवान चूनड़ी की साड़ियां दासी द्वारा सूर्यमल जी के पास भेजी और निवेदन करवाया, अपनी ठुकरानीजी के लिए साड़ियां पसंद कीजिये। महाकवि ने चूनड़ियों को देख कर उत्तर भेजा, जब आप अपने पति के मरने पर इनमें से कोई चूनड़ी ओढ़कर सती होने के लिए प्रस्थान करेंगे तभी मैं चूनड़ी का मोल आंकूंगा।

मिनाय राणीजी कवि-वाणी से प्रभावित हुए बिना नहीं रही और एक अच्छी चूंनड़ी को संभाल कर रख लिया। जब मिनाय राजा जी का देहान्त हुआ तब राणीजी चूंनड़ी ओढकर सती होने के लिए रवाना हुई और महा कवि को सूचना दी, "मैंने आपकी आज्ञा का पालन कर लिया है, अब आइये और चूंनड़ी देखिए।" कहते हैं सूर्यमल ने इस घटना के आधार पर सती-चरित्र की रचना की।

कविराजा के प्रधान गुरु स्वामी स्वरूपदास जी दादूपंथी थे जिनका सर्वत्र बड़ा आदर था। स्वामी जी के अतिरिक्त अन्य भी कई गुरु थे जिनका महाकवि ने अपने वंश भास्कर नामक ऐतिहासिक महाकाव्य में बड़ी ही विनम्रता और कृतज्ञता से वर्णन किया है।

महाकवि सूर्यमल के शिष्यों की संख्या भी कम नहीं थी। महा कवि के एक शिष्य स्वामी गणेश पुरी थे। एक बार गणेशपुरी जी सूर्यमल जी से मिलने के लिए बूंदी आये। सूर्यमल जी ने मिलने से पहले उनसे जानना चाहा कि वे चारण होकर कुछ पढे लिखे भी हैं। गणेशपुरी जी ने घर के बाहर खड़े रह कर नकारात्मक उत्तर दिया जिसको भीतर सूर्यमल ने सुन लिया। सूर्यमल ने भीतर से ही कहा, "मैं अपढ़ चारण का मुंह देखना नहीं चाहता।" गणेशपुरी जी महाकवि सूर्यमल के इस वाक्य को सुन कर प्रभावित हुए बिना न रहे और बूंदी से अपने घर नहीं लौट कर सीधे काशी गए। गणेशपुरी जी ने काशी में १० वर्ष निवास कर विद्या-भ्यास किया और अन्त में महाकवि सूर्यमल के पास आकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

महाकवि सूर्यमल ने छः विवाह किये थे जिनसे केवल एक कन्या का जन्म हुआ। कहते हैं कि एक बार महाकवि ने प्यार में अपनी लड़की को इतना हिलाया-डुलाया की उसका देहांत हो गया।

जब कविराजा सूर्यमल की प्रथम पत्नि का देहान्त हुआ तो ये तानपुरा ले कर उसकी शव-यात्रा में सम्मिलित हुए। दाह-क्रिया के पूर्व महाकवि तानपुरा लेकर गाने लगे—

लाड़ी जी घूंघटड़ो खोलो म्हांने चाव छै।

श्मशान में अपनी पत्नि के विरह में बहुत देर तक गाते रहे और अन्त में लोगों ने इनको समझा-बुझा कर मृत देह का दाह-संस्कार किया।

महाकवि सूर्यमल ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की—

१. वंश-भाष्कर, २. बलवन्त विलास, ३. छन्दोमयूख, ४. वीर सतसई, ५. राम रंजाट, ६. सती रासो और ७. धातु रूपावली।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कई फुटकर दोहे, कवित्त, सवैये भी महा कवि ने लिखे।

महाकवि सूर्यमल ने अपने समय में प्रचलित राजस्थानी और ब्रज दोनों ही भाषाओं में उत्कृष्ट काव्य-रचना की है और इन्होंने की डिंगल तथा पिंगल दोनों ही काव्य-शैलियों को अपनाया है। इसके ग्रन्थों में प्रमुख दो ग्रन्थ हैं, पिंगल में लिखित ऐतिहासिक महाकाव्य वंश-भाष्कर और डिंगल में लिखित अपूर्ण काव्य-वीर सतसई।

वंश-भाष्कर एक वृहद् ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें मुख्यतः बूंदी का इतिहास वर्णित है किन्तु प्रसंगानुसार सारे राजस्थान का इतिहास दिया गया है। कवि ने वंश-भाष्कर लिखते समय अपने और अपने आश्रयदाताओं को यथातथ्य निरुपित करने में कोई संकोच नही किया है। महाकवि सूर्यमल वंश-भास्कर में अपने आश्रयदाता बूंदी नरेश महाराज रामसिंह जी के दोषों का भी निरूपण करने लगे तो महाराज ने कहा, "मुझे अपनी कटु आलोचना सह्य नहीं है।" इस पर कवि राजा ने उत्तर दिया, "सब के दोष लिखे गए हैं तो आपके भी लिखे जावेंगे।" इस बात पर दोनों में मन मुटाव हो गया और कविराज ने वंश-भास्कर को अपूर्ण ही छोड़ दिया। महाकवि सूर्यमल ने फिर कभी वंश-भास्कर का कार्य हाथ में नहीं लिया। सूर्यमल ने रतलाम-नरेश को अपने वैसाख शुक्ला सप्तमी संवत् १९२४ के पत्र में लिखा है, "अठे ग्रन्थ को निर्माण रुध हुओ तिको लिखवा तो लज्जा मोकूप ही करे छे क्योंके आपका स्वामी की निन्दा शुभचिन्तक होय तिको लिखबा में ओचित्य न पावे छे।"

महाकवि की मृत्यु के उपरान्त अपूर्ण वंश-भास्कर को महाकवि के दत्तक पुत्र मुरारीदान जी ने पूरा किया।

महाकवि सूर्यमल की वीरसतसई भी अपूर्ण ही रही और इसके केवल २८८ दूहे ही बन सके। अपूर्ण होने पर भी वीरसतसई हमारे साहित्य का एक उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ माना गया है। वीरसतसई के विषय में सुप्रसिद्ध भारतीय विद्वान आचार्य श्री सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने लिखा है—

"सुन्दर वस्तु अमर है। मेरे विचार में वंश-भास्कर जैसे बृहद् ग्रन्थ भविष्य में जनता के लिए नहीं रहेगा पर वीरसतसई के दूहे राजस्थानी का अस्तित्व जब तक रहेगा तब तक अमर रहेगा।"

वीरसतसई के दूहों का राजस्थानी जनता में बहुत प्रचार है और इनके आधार पर कहा जाता है 'महाकवि सूर्यमल जैसा कवि न हुआ और न होगा।"

महाकवि सूर्यमल ने वीरसतसई में टकसाली राजस्थानी साहित्यिक मारवाड़ी एवं डिंगल का उपयोग कर राजस्थानी भाषा की एकरूपता को सुरक्षित किया। वीरसतसई की भाषा अत्यन्त सरस, ओजपूर्ण और गुण-सम्पन्न है।

राजस्थान के गौरवमय इतिहास में सतियों का विशेष स्थान है और हमारे कवि ने भी सतियों के गुणगान में किसी प्रकार की कमी नहीं की है। सती होने के लिए उत्सुक वीरांगना के लिए महाकवि ने निम्नलिखित दोहों में अपने हृदयोद्गार प्रकट किये हैं—

> नायण आज न मांड पग, काल्ह सुणीजे जंग।
> धारां लागीजै धणी, तो दीजे धण रंग॥

हे नायण, आज मेरे पैरों में मेंहदी न लगा क्योंकि कल युद्ध होने वाला है। यदि मेरा पति युद्ध में मारा जावे तो फिर सती होने के अवसर पर अच्छी तरह से मेंहदी लगाना।

> हूं पाछे आगई हुवे, आगौ नाह घरेह।
> जै वाली धण जीव हूं, आगे मूझ करेह॥

विवाह होने पर मैं पीछे रही और हे नाथ, आगे रह कर आप मुझे घर पर लाये। यदि आपको अपनी स्त्री प्राणों की भांति प्यारी है तो अब सती होने का अवसर देकर मुझे आगे करो।

> काली चूडो की तजे, मंगल वेलां रोय।
> रावत जाई डीकरी, सदा सुहागण होय॥

महाकवि सूर्यमल का मत है कि वीरांगना सती होकर सदा ही सुहागण रहती है और वह इस मंगल वेला में रोती हुई चूड़ा नहीं उतारती।

महाकवि सूर्यमल ने अपनी रचनाओं में मरण-त्यौहार की अनोखी छटा प्रदर्शित की है। राजस्थान के आबाल वृद्ध वीर-वीरांगनाओं ने मरण को महान त्यौहार माना है—

आज घरे सासू कहे, हरख अचाणक काय।
बहू बलेवा हूलसे, पूत मरेवा जाय॥

सास कहती है आज उसे प्रसन्नता क्यों हो रही है? इसीलिए कि उसकी पुत्र-वधु सती होने के लिए उमंगित हो रही है और पुत्र मरने जा रहा है।

वाला चाल म वीसरे, मो थण जहर समाण।
रीत मरंतां न ढील की, ऊठ थियो घमसाण॥

मरण-त्यौहार के अवसर पर मां अपने पुत्र को प्रेरित करती हुई कहती है कि बेटा, अपनी वीरता की परंपरा मत भूल। बेटा, मेरा दूध तो जहर है। जो इसे पीता है वह अवसर आने पर मरता है। तुसने व्यर्थ ही विलंब किया। उठो, युद्ध प्रारंभ हो गया है।

और जहर मुख आवियां झट भेजे परधाम।
अतरो अंतर मुझ में, मारे पड़ियां काम॥

दूसरा जहर तो मूंह मे आते ही तुरन्त परधाम भेज देता है। मेरे दूध में और जहर में यही अन्तर है कि मेरा दूध काम पड़ने पर ही मारता है।

मां द्वारा लड़ मरने के लिए प्रेरित किये जाने पर भी यदि पुत्र युद्ध क्षेत्र से भाग आता है तो उसे आजन्म लाछंना सहनी पड़ती है—

भोला कि डर भागियो, अन्त न पौढे एण।
बीजी दीठां कुल बहू, नीचा करसी नैण॥

हे भोले तू किस डर से युद्ध भूमि छोड़कर भाग आया। क्या मौत यहां तक नहीं पहुंचेगी? साथ ही बहू देखेगी तो लज्जित होकर अपनी आंखे नीची कर लेगी।

पूत महा दुःख पावियो, बय खोवण थन पाय।
एम न जाण्यो आवही, जामण दूध लजाय॥

हे पुत्र, मैंने तुमको अपने तन का दूध पिलाकर बड़े दुख से पाला है। मैंने यह नहीं जाना था कि तुम मां के दूध को लज्जित कर युद्धक्षेत्र से भाग जावोगे।

महा कवि सूर्य ने बालवीरों का बड़ा ही मार्मिक चित्र अंकित किया है—

हूं बलिहारी राणियां, भ्रूण सिखावण भाव।
नालो, बाढणरी छुरी, झपटे जणियो साव॥

कवि उन रानियों पर बलिहारी जाता है जो गर्भ में ही बालक को वीरता की शिक्षा देती है और बालक जन्म लेते ही काटने की छुरी झपटने लगता है।

कुछ बड़े होने पर यही बालक अपनी मां से कहता है—

मन सोचे जाणे मती, मोने बालक माय।
बैर पराया वाहुडे, जठे न घर रा जाय।।

हे माता, मुझ बालक समझकर तू चिन्ता मत कर। जहां दूसरों के बैर भी बैरियों द्वारा ले लिए जाते हैं तो वहां घर के व्यर्थ नहीं जाते।

कुल थारो रण पोढणो, मोनो कहती माय।
प्राणा गाहक पेखिया, कसियो वरजै काय।।

हे माता तू कहा करती थी कि अपना कुल रणभूमि में मरकर सोने वाला है। अब मैंने अपने प्राणों के ग्राहक देख लिये हैं तू फिर किस प्रकार रोकती है?

वीरांगनायें भी अपने स्वामियों को मरणत्यौहार में मर मिटने के लिए प्रेरित करती हैं। युद्ध क्षेत्र में शत्रु पाहुनों की तरह प्रतीक्षा करते हैं।आकाश में गिद्ध मंडराने लगते हैं और प्यालों में कसूंबा झलकने लगता है तो वीरांगना कहती हैं—

पंथ निहारे पाहुणा, गिद्ध निहारे गैण।
अमल कचोला ऊछलई, नींद विछोडो नेण।।

प्रियतम, युद्धभूमि में शत्रु आपकी राह पाहुने की तरह देखते हैं। गिद्ध आकाश में मंडराते हैं और अफीम प्यालों में छलक रही है। अब आप आंखों से नींद को दूर कीजिए।

और जब शूरवीर युद्धक्षेत्र की ओर रवाना होता है तब उसे चेतावनी दी जाती है—

विण मरिया विण जीतियां, वणी जाविया धाम।
पग पग चूड़ी पाछटूं, जै रावतरी जाम।।

हे स्वामी, युद्ध में बिना मरे हुए अथवा बिना जीते हुए घर आ गए तो मैं पग-पग पर अपने सुहाग चिह्न चूड़ियां तोड़ दूंगी और तभी में वास्तव में क्षत्रिय पुत्री कही जाऊंगी।

महाकवि सूर्यमल की रचनाओं में शृंगारपूर्ण वीरता की अभिव्यंजना भी बड़े अनोखे रूप में हुई है। राजस्थान की शूरवीरता उद्दाम यौवन और शृंगार के सरस वातावरण में विकसित हुई है तथा निम्नकोटि की श्रांगारिक भावनाओं पर वीर भावना ने सहज ही विजय प्राप्त करली है। राजस्थानी शूरवीरों की मनो-भावना "मरदां मरणो हक्क है मगर पचीसी माय" कहावत के अनुसार निम्नलिखित प्राचीन दूहों में व्यक्त हुई है—

तीखा तुरी न माणियां, गड़ सिर खग्ग न भग्ग।
जन्म अकारथ ही गयो, गोरी गले न लग्ग ।।

यह जीवन व्यर्थ ही चला गया क्योंकि न तो तेज घोड़े पर सवारी की, न शूरवीरों के सर पर तलवार चलाई और न गोरी को ही गले लगाया।

महाकवि सूर्यमल की वीरांगनाएं बड़े ही मार्मिक शब्दों में अपनी शृंगारिक भावनाएं व्यक्त करती हैं।

कन्थ लखीजे उभय कुल, नथी फिरन्ती छांह।
मुड़ियां मिलसी गिन्दवो, वले न धणरी बांह ।।

हे पति, आप अपना और मेरा दोनों का कुल देखिये। इस सिर की चलायमान छाया की ओर मत देखिये। यदि आप युद्धक्षेत्र से भाग आये तो आपके सर के नीचे लगाने के लिए तकिया मिलेगा, फिर स्त्री की बांह नहीं मिलेगी।

राजस्थान में वीरता के विकास के लिये कायरों की भर्त्सना भी आवश्यक मानी गई है। कवि ने वीर-वीरांगनाओं की प्रशंसा के साथ ही कायरों की प्रताडना भी जोरदार शब्दों में की है। यही कारण है कि राजस्थान में लोगों ने कायर बन कर अपना पूर्ण जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा युद्धभूमि में मरकर यश प्राप्त करना उचित समझा है। चारण कवि सूर्यमल भी कायरों की भर्त्सना वीरांगनाओं के मुंह से करवाते हैं –

यो गहणो यो वेश अब, कीजै धारण कंथ।
हूं जोगण किण कामरी, चूड़ा खरच मिटंत ।।

हे पतिदेव, मेरा यह गहना और यह वेश अब आप ही धारण कीजिए। आपके कायर होने से मैं जोगण बन गई और आपके काम की नहीं। अब यह चूड़े का खर्च भी मिटता है।

मणिहारी जारी सखी, अब न हवेली आव।
पीव मुवा घर आविया, विधवा किसा बणाव ।।

हे मणिहारी सखी, तू अब चली जा और मेरी हवेली पर फिर न आना। मेरे पति कायर रूप में मर कर घर आ गये हैं। विधवा के लिए कैसा बनाव ?

पोता रे बेटा थिया, घर में वधियो जाल।
अब तो छोड़ो भागणो, कंथ लुभायो काल ।।

आपके पौत्रों के भी पुत्र हो गए हैं और घर में जंजाल बढ़ गया है। स्वामी, अब तो मृत्यु सामने खड़ी है इसलिए युद्ध से भागना छोड़ो।

कवि ने युग की नवीनतम भावनाओं को भी अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। इसीलिए उन्होंने महलों में रहने वाले अधिपतियों को छोड़ कर झोंपड़ियों में रहने वाले शूरवीरों की सराहना की है—

टोटे सरका भीतड़ा, घातै ऊपर घास।
वारीजई मड़ भूपड़ां, अधिपतियां आवास॥

शूरवीरों के ऐसे झोंपड़ों पर जिनमें सदा ही जीवनोपयोगी साधनों की कमी रहती है और जिनकी दीवारों को घास से ढक कर रखा जाता है, राजाओं के महलों को भी वार देना चाहिये।

महलां लूटण धाडवी, भूपड़ियां न सुहाव।
भूपडियां री लूट में, जीव सीलणे जाव॥

महलों के लूटने वाले धाड़ेतियों को झोपड़े नहीं सुहाते क्योंकि झोपड़ों की लूट में व्यर्थ ही प्राण चले जाते हैं।

महाकवि ने सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वाधीनता संग्राम में बड़ी रुचि ली थी और उसी समय उन्होंने अपना अमर राजस्थानी काव्य वीर-सतसई का निर्माण प्रारम्भ किया था। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के प्रति राजस्थानी नरेशों की उदासीनता देख कर पीपली के ठाकुर फूलसिंह जी को महाकवि ने अपने पोष शुक्ला प्रतिपदा एकम संवत् १६१४ के पत्र में लिखा—

"अर ये राजा लोग देस जमीं का ठाकर छै जै साराही हिमालय का गलिया निसरिया सौं चालीस से लेर साठ सत्तर बरस ताईं पाछै पटक्या छै तो भी गुमाण करै छै परन्तु ये थे म्हारा बचन राज याद राखोगा कि जै अबके अंग्रेज रह्यो तो इका गाया ही पूरा करसी जमी को ठाकर कोई भी न रहसी.................थोड़ी में बहुत जाण लेसी।"

स्वाधीनता-संग्राम में महाकवि सूर्यमल अपने साथियों सहित भाग लेने के लिये तैयार हुए थे। ठाकुर बख्तावरसिंह जी ठिकाना नामली, रतलाम को उन्होंने अपने पत्र में लिखा है—

"उठी की तरफ का राजा लोगां में राज्य में प्राणां की बाजी लगावा वाला वीर आन बण्या का साथी होता दिखता होई थो पोसीदे लिखसी। जदी अठी भी जमी बीज लियां छै सो और भी कई साथी होवा पर तैयार छै और फेर भी केही तैयार हो जावे। साथी खड़ा करवा को विल्लो म्हा लोकां को कुल कसब छै ही और अठी सू भी तफसीलवार लिखी जावसी परन्तु हाल तो पोसीद ही ठीक छै। राज्य तो अंग्रेज की सामर्थ्य देखतां इ बातने नादानगी की ही जाणसी अर बात भी नादानगी

की छै परन्तु म्हा लोकांने तो परमेश्वर ठेठ सूं ही नादानगी ही दीनी तो म्हामें दानाई कठा सूं होई।"

सन् १८५७ के स्वाधीनता-संग्राम को प्रेरित करने के लिए महाकवि सूर्यमल ने वीर-सतसई का निर्माण किया और उसमें लिखा—

अठे सुजस प्रभुता उठे, अवसर मरियां आय।
मरणो घर रे मांझिया, जम नरकां ले जाय॥

अवसर होने पर मरने से इस संसार में सुयश मिलता है और परलोक में प्रभुता प्राप्त होती है। किन्तु घर में कायर की भांति मरने पर यमराज नरक में ले जाते हैं।

घोड़ां घर ढालां पटल, माला थंभ वणाय।
जे ठाकुर भोगे जमी, और किसो अपणाय।

घोड़ों के घर, ढालों की छाया और अपने भालों के थंभ बनाकर जो ठाकुर जमीन का भोग करता है उस जमीन को दूसरा कैसे अपना सकता है?

दु:ख है कि प्रमाद में सोई हुई हमारी अधिकांश जनता कवि-वाणी को स्वीकार करने में असमर्थ रही और कवि को अन्त में निराशा का सामना करना पड़ा। चारों ओर कायरता देख कर कवि राज अत्यन्त उद्विग्न होकर अपने आंगन के इमली के पेड़ पर चढ़ जाते और कई घन्टे तक वहीं बैठकर गाया करते—

मीसण थारो मनड़ो कहू न दीखे।

ऐसी दुखी अवस्था में महाकवि सूर्यमल अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सके और केवल ५३ वर्ष की अवस्था में ही आषाढ़ कृष्णा एकादशी संवत् १९२५ विक्रमी में इनका देहान्त हो गया।

महाकवि अब इस संसार में नहीं हैं किन्तु उनकी परम उत्कृष्ट राजस्थानी रचनाएं आज भी हमारा मार्ग-दर्शन कर रही हैं। कई कवियों ने महाकवि सूर्यमल की रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर अनूठी वाणी का प्रसार किया है। सूर्यमल की वीर-रस-पूर्ण रचनाएं युग-युगान्तर तक स्वाधीनता की महत्ता उद्घोषित करती हुई हमारा मार्ग प्रशस्त करती रहेगी।

—:o:—

: ९ :

राजस्थानी लोक-साहित्य

हमारा साहित्य मुख्यतः दो रूपों में उपलब्ध होता है। पहला शास्त्रीय साहित्य, साहित्य जो व्यक्ति विशेष द्वारा शास्त्रीय नियमोपनियमों का निर्वाह करते हुए रचित हो। दूसरा लोक साहित्य—यह साहित्य मौखिक परंपरा से प्राप्त होता है और इसका रूप व्यक्ति विशेष द्वारा रचित होकर काल-परम्परानुसार अनेक जनसमुदायों द्वारा रचित और परिमार्जित होता है। हमारा लोक-साहित्य केवल ग्राम्य जनता और आदिवासियों में ही नहीं प्रचलित है वरन् नगरों में सुसांस्कृतिक परिवारों में भी इसका प्रसार और महत्व है। सुसांस्कृतिक परिवारों के अनेक धार्मिक और सामाजिक पर्व और विधि-विधान लोक-गीतों और लोक-कथाओं आदि से संपन्न किये जाते हैं। अनेक धार्मिक अवसरों पर लोक-गीतों का व्यवहार मंत्रवत् अनिवार्य होता है। ऐसी अवस्था में लोक-साहित्य को अंग्रेजी के "फाकलोर" का पर्याय मानकर केवल असभ्य जन-समुदायों का साहित्य नहीं माना जा सकता है। हमारे अनेक विद्वानों ने लोक-साहित्य अथवा लोकवार्ता को "फॉकलोर" का पर्याय माना है।[1] "फॉकलोर" शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

१८४६ में डबल्यू० जे० थामस ने यह शब्द सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृत समुदाय की प्रथाओं, रीति—रिवाजों तथा मूढ़ाग्रहों को अभिव्यक्त करने के लिए गढ़ा था। शब्दों का अर्थ परिभाषाओं द्वारा नियत नहीं होते, प्रयोग द्वारा होते हैं और आज लोकवार्ता परिभाषा में जानबूझकर बाहर रखा गया था, यथा लोकप्रिय कलायें तथा शिल्प। दूसरे शब्दों में जानपदजन की मौखिक के साथ-साथ

---

१. भारतीय लोकसाहित्य (श्याम परमार) राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ. ६ से २२।

बौद्धिक संस्कृति भी। मुख्यतः टेलर, फ्रेजर तथा अन्य अंग्रेज वैज्ञानिकों के उद्योगों के परिणाम स्वरूप, जिन्होंने युरोपीय जाननृजन मूढ़ाग्रहों और परम्परागत रीति-रिवाजों की व्याख्या करने के लिए तथा उन्हें समझाने के लिये निम्न स्तर की संस्कृति में मिलने वाले साम्य के उपयोग करने की ओर विशेष ध्यान दिया। अंग्रेजी परम्परा में फॉकलोर (लोक वार्ता) के क्षेत्र तथा सामाजिक जीवन-विज्ञान के क्षेत्र की कोई सूक्ष्म सीमा निर्धारित नहीं की जाती……प्रयोग में साधारण प्रवृत्ति इस फॉकलोर (लोक वार्ता) के क्षेत्र को संकुचित अर्थ में सभ्य समाजों में मिलने वाले पिछड़े तत्वों की संस्कृति तक ही सीमित रखने की है।[1]

इसी प्रकार लोक-संस्कृति की व्याख्या करते हुए उसको आदिम-मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति कहा गया है—

"लोक-संस्कृति वस्तुतः आदिम-मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो अथवा सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के उपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में सम्पन्न हुई हो।[2]

लोक-साहित्य में निहित लोक से तात्पर्य हमारी सम्पूर्ण जनता से है फिर चाहे वह ग्रामवासिनी हो अथवा नगरवासिनी। लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है जिसका प्रयोग वैदिककाल से आधुनिक काल तक होता रहा है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इस विषय में लिखा है—

"लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक-राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति

---

१. एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका।

२. (क) ए हैण्ड बुक आफ फॉक लार—सोफिया बर्न।

(ख) व्रज लोक—साहित्य का अध्ययन, डॉ. सत्येन्द्र, पृ. ४—५।

रचनाओं का समावेश करना ही समीचीन होगा। लोक-साहित्य में विषय, पूजा, अनुष्ठान, व्रत, जादू, टोना, भूत-प्रेत, तावीज, सम्मोहन, वशीकरण आदि अनेक हो सकते हैं किन्तु लोक-साहित्य के प्रकारों के अन्तर्गत साहित्यिक रचनाओं को ही लिया जाना चाहिये क्योंकि लोक-साहित्य का अर्थ लोक का साहित्य है।

लोक-साहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

ऐसे लोकगीत, कथायें और लोकोक्तियां आदि भी हैं जिनका प्रचलन स्त्रियों और पुरुषों में समान रूप से, बालक-बालिकाओं में समान रूप से अथवा स्त्री-पुरुष-बालक सबमें समान रूप से है। उक्त वर्गीकरण में ऐसे साहित्य का समावेश नहीं है इसलिये उक्त वर्गीकरण पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

---

१. श्याम परमार, भारतीय लोक-साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ० २१।

लोक-साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा—

लोक-साहित्य

- **लोकगीत**
  - धार्मिक लोकगीत
    1. १. संस्कारों के गीत
    2. २. देवी-देवताओं के गीत
    3. ३. व्रतों के गीत
    4. ४. रातीजगों के गीत
    5. ५. फुटकर गीत
  - मनोरंजनात्मक लोकगीत
    1. १. त्योहारों के गीत
    2. २. ऋतुओं के गीत
    3. ३. क्रीड़ाओं के गीत
    4. ४. फुटकर गीत
- **लोक कथायें**
  1. १. नीति कथायें
  2. २. व्रत कथायें
  3. ३. प्रेम कथायें
  4. ४. मनोरंजक कथायें
  5. ५. दन्त कथायें
  6. ६. पौराणिक कथायें
  7. ७. विविध कथायें
  8. ८. बाल-कथायें
- **लोक कथा काव्य**
  1. १. धार्मिक लोक कथा-काव्य
  2. २. ऐतिहासिक लोककथा-काव्य
  3. ३. विविध विषयक
- **लोक नाटक**
  1. १. धार्मिक लोक नाटक
  2. २. ऐतिहासिक लोक नाटक
  3. ३. प्रेमाख्यान परक लोक नाटक
  4. ४. विविध विषयक लोक नाटक
- **कहावतें, मुहावरे, पहेलियां**
  1. १. नीति सम्बन्धी
  2. २. सामाजिक
  3. ३. धार्मिक
  4. ४. ऐतिहासिक
  5. ५. स्थान और जाति संबंधी
  6. ६. विविध ज्ञान संबंधी

: १० :

राजस्थानी कथा-साहित्य

आत्माभिव्यक्ति मानव-प्रकृति की एक प्रधान विशेषता है इसलिए मानव सदा ही किसी न किसी रूप में आप-बीती प्रकट करता रहा है। मनुष्य में पर-बीती सुनने की भी रुचि रही है। साथ ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये पूर्वानुभव का मानव-जीवन के विकास में और मानव सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में विशेष उपयोग हुआ है। इस प्रकार मानव-सभ्यता और मानव-संस्कृति के उदय एवं विकास के साथ ही कथा-साहित्य का भी उदय और विकास हुआ है।

संसार के कई देशों में कथा-लेखन की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है। ग्रीस, मिश्र, भारत, तिब्बत और चीन आदि देशों में प्राचीन कथा-साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में भारतवर्ष कथा-साहित्य के प्रणयन में अग्रणी रहा है और प्राचीन वैदिक काल से ही इस देश में कथा-साहित्य किसी न किसी रूप में मिल जाता है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में प्राचीन कथा-साहित्य का निर्माण सबसे अधिक मात्रा में हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय कथा-साहित्य का अन्य कई देशों के कथा-साहित्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव भी हुआ है। उदाहरण स्वरूप पंचतंत्र का प्रथम विदेशी अनुवाद पहलवी–प्राचीन फारसी में उपलब्ध होता है। यह अनुवाद फारस के बादशाह नौशेरवां खुसरो के दरबारी हकीम बुरजोई ने ५३१ ई० से ५७६ ई० के बीच "फोलिलग दमनग" के नाम से किया। फिर बुद्ध नामक ईसाई ने ५७० ई० में "कलिलह और दमनह" नाम से सरियिन भाषा में इसका अनुवाद किया। चीनी भाषा में भी कई भारतीय कथाएं उपलब्ध हैं। ईसप की कहानियां और "अरेबियन नाईट्स" की कहानियों पर भी भारतीय कहानियों की छाप है।

भारतीय कथा-साहित्य का प्रारम्भ ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों से होता है। स्तुति परक सूक्तों में भी कई अख्यान हैं जिनमें "अपाला की कथा" मुख्य है। उपनिषदों में भी कई कथाएं मिलती हैं। केनोपनिषद् में देवताओं की शक्ति-परीक्षा,

कठोपनिषद् में नचिकेता का साहस, छान्दोग्य उपनिषद् में सत्यकाम, जानश्रुवा आदि की कथाएं, वृहदारण्यक में गार्गी और याज्ञवल्क्य की कथा, तैतिरीय में आश्विनी की कथा और मण्डूकोपनिषद् में महाशल्य, शौनर और अंगिरा की कथा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रामायण और महाभारत में विभिन्न कथाओं का सुन्दर संयोजन हुआ है। इनमें इतिहास धर्म और कल्पना का समन्वय किया गया है। रामायण और महाभारत की कथाओं के आधार पर ही कई साहित्यिक रचनाओं का निर्माण हुआ है।

जातक में भगवान बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित ५७७ कथाओं का समावेश किया गया है। जातक का संगठन इस प्रकार है—

१. पच्चुयन्नवत्थु वर्तमान सम्बन्धी कथाएं।
२. अतीतवत्थु अतति सम्बन्धी कथाएं।
३. अत्यवसाना गाथाओं की व्याख्या।
४. समोधान पूर्वजन्म में कौन क्या था ? जिसका समाधान।

गुणाढ्य द्वारा पैशाची में लिखित वृहत्कथा-संग्रह (पहली सदी ई०) अब अप्राप्य है किन्तु हर्षचरित्र, काव्यादेश, वृहत्कथा-मंजरी और कथासरित्सागर में इसके प्रमाण मिलते हैं। कथासरित सागर (११वीं सदी ई०) भारतीय कथाओं का एक अनूठा ग्रन्थ है। इसी प्रकार वैताल-पंचविंशति, शुकबहुत्तरी, सिंहासनद्वात्रिंशिका, हितोपदेश आदि संस्कृत के अन्य महत्वपूर्ण कथाग्रन्थ हैं।

प्राकृत-अपभ्रंश में भी लीलावई कहा, पउमिसि रिचरिउ श्री चन्द का कथा-कोश, द्वाविंश परास्त, समराइच्चकहा, वन्नलग्ग, भाविसयत्त कहा आदि कई कथा-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

राजस्थानी भाषा में अन्य कई विषयों के साथ प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य के अनुवाद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। साथ ही राजस्थानी भाषा में स्वतन्त्र रूप में भी कथा-साहित्य का निर्माण हुआ है। राजस्थानी कहानियां वास्तव में मौलिकता और सुविकसित कलात्मक लेखन शैली के कारण भारतीय साहित्य में विशेष आदरणीय स्थान की अधिकारिणी है। राजस्थानी कथा-साहित्य की अनूठी रचनाओं से सिद्ध होता है कि राजस्थानी भाषा पद्य-लेखन के साथ ही गद्य-लेखन में भी सम्पन्न है।

राजस्थानी कथा-साहित्य का विषय-वर्गीकरण पांच भागों में किया जा कता है—

रचनाओं का समावेश करना ही समीचीन होगा। लोक-साहित्य में विषय, पूजा, अनुष्ठान, व्रत, जादू, टोना, भूत-प्रेत, तावीज, सम्मोहन, वशीकरण आदि अनेक हो सकते हैं किन्तु लोक-साहित्य के प्रकारों के अन्तर्गत साहित्यिक रचनाओं को ही लिया जाना चाहिये क्योंकि लोक-साहित्य का अर्थ लोक का साहित्य है।

लोक-साहित्य का वर्गीकरण

लोक-साहित्य का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है—

ऐसे लोकगीत, कथायें और लोकोक्तियां आदि भी हैं जिनका प्रचलन स्त्रियों और पुरुषों में समान रूप से, बालक-बालिकाओं में समान रूप से अथवा स्त्री-पुरुष-बालक सबमें समान रूप से है। उक्त वर्गीकरण में ऐसे साहित्य का समावेश नहीं है इसलिये उक्त वर्गीकरण पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

---

१. श्याम परमार, भारतीय लोक-साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ० २१।

लोक-साहित्य का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में करना उचित होगा—

लोक-साहित्य

- **लोकगीत**
  - धार्मिक लोकगीत
    1. संस्कारों के गीत
    2. देवी-देवताओं के गीत
    3. व्रतों के गीत
    4. रातीजगों के गीत
    5. फुटकर गीत
  - मनोरंजनात्मक लोकगीत
    1. त्योहारों के गीत
    2. ऋतुओं के गीत
    3. क्रीड़ाओं के गीत
    4. फुटकर गीत
- **लोक कथायें**
  1. नीति कथायें
  2. व्रत कथायें
  3. प्रेम कथायें
  4. मनोरंजक कथायें
  5. दन्त कथायें
  6. पौराणिक कथायें
  7. विविध कथायें
  8. बाल-कथायें
- **लोक कथा काव्य**
  1. धार्मिक लोक कथा-काव्य
  2. ऐतिहासिक लोककथा-काव्य
  3. विविध विषयक
- **लोक नाटक**
  1. धार्मिक लोक नाटक
  2. ऐतिहासिक लोक नाटक
  3. प्रेमाख्यान परक लोक नाटक
  4. विविध विषयक लोक नाटक
- **कहावतें, मुहावरे, पहेलियां**
  1. नीति सम्बन्धी
  2. सामाजिक
  3. धार्मिक
  4. ऐतिहासिक
  5. स्थान और जाति संबंधी
  6. विविध ज्ञान संबंधी

: १० :

राजस्थानी कथा-साहित्य

आत्माभिव्यक्ति मानव-प्रकृति की एक प्रधान विशेषता है इसलिए मानव सदा ही किसी न किसी रूप में आप-बीती प्रकट करता रहा है। मनुष्य में पर-बीती सुनने की भी रुचि रही है। साथ ही मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिये पूर्वानुभव का मानव-जीवन के विकास में और मानव सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में विशेष उपयोग हुआ है। इस प्रकार मानव-सभ्यता और मानव-संस्कृति के उदय एवं विकास के साथ ही कथा-साहित्य का भी उदय और विकास हुआ है।

संसार के कई देशों में कथा-लेखन की प्रवृत्ति प्राचीन काल से ही प्राप्त होती है। ग्रीस, मिश्र, भारत, तिब्बत और चीन आदि देशों में प्राचीन कथा-साहित्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में भारतवर्ष कथा-साहित्य के प्रणयन में अग्रणी रहा है और प्राचीन वैदिक काल से ही इस देश में कथा-साहित्य किसी न किसी रूप में मिल जाता है। अन्य देशों की अपेक्षा भारत में प्राचीन कथा-साहित्य का निर्माण सबसे अधिक मात्रा में हुआ है। इतना ही नहीं भारतीय कथा-साहित्य का अन्य कई देशों के कथा-साहित्य पर महत्वपूर्ण प्रभाव भी हुआ है। उदाहरण स्वरूप पंचतंत्र का प्रथम विदेशी अनुवाद पहलवी–प्राचीन फारसी में उपलब्ध होता है। यह अनुवाद फारस के बादशाह नौशेरवां खुसरो के दरबारी हकीम बुरजोई ने ५३१ ई० से ५७९ ई० के बीच "फोलिलग दमनग" के नाम से किया। फिर बुद्ध नामक ईसाई ने ५७० ई० में "कलिलह और दमनह" नाम से सरियिन भाषा में इसका अनुवाद किया। चीनी भाषा में भी कई भारतीय कथाएं उपलब्ध हैं। ईसप की कहानियां और "अरेबियन नाईट्स" की कहानियों पर भी भारतीय कहानियों की छाप है।

भारतीय कथा-साहित्य का प्रारम्भ ऋग्वेद के संवाद-सूक्तों से होता है। स्तुति परक सूक्तों में भी कई अख्यान हैं जिनमें "अपाला की कथा" मुख्य है। उपनिषदों में भी कई कथाएं मिलती हैं। केनोपनिषद् में देवताओं की शक्ति-परीक्षा,

कठोपनिषद् में नचिकेता का साहस, छान्दोग्य उपनिषद् में सत्यकाम, जानश्रुवा आदि की कथाएं, वृहदारण्यक में गार्गी और याग्यवल्क्य की कथा, तैत्तिरीय में आश्विनी की कथा और मण्डूकोपनिषद् में महाशल्य, शौनर और अंगिरा की कथा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

रामायण और महाभारत में विभिन्न कथाओं का सुन्दर संयोजन हुआ है। इनमें इतिहास धर्म और कल्पना का समन्वय किया गया है। रामायण और महाभारत की कथाओं के आधार पर ही कई साहित्यिक रचनाओं का निर्माण हुआ है।

जातक में भगवान बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित ५७७ कथाओं का समावेश किया गया है। जातक का संगठन इस प्रकार है—

१. पच्चुयन्नवत्थु वर्तमान सम्बन्धी कथाएं।
२. अतीतवत्थु अतति सम्बन्धी कथाएं।
३. अत्यवसाना गाथाओं की व्याख्या।
४. समोधान पूर्वजन्म में कौन क्या था? जिसका समाधान।

गुणाढ्य द्वारा पैशाची में लिखित वृहत्कथा-संग्रह (पहली सदी ई०) अब अप्राप्य है किन्तु हर्षचरित्र, काव्यादेश, वृहत्कथा-मंजरी और कथासरित्सागर में इसके प्रमाण मिलते हैं। कथासरित सागर (११वीं सदी ई०) भारतीय कथाओं का एक अनूठा ग्रन्थ है। इसी प्रकार वैताल-पंचविंशति, शुकबहुत्तरी, सिंहासनद्वात्रिंशिका, हितोपदेश आदि संस्कृत के अन्य महत्वपूर्ण कथाग्रन्थ हैं।

प्राकृत-अपभ्रंश में भी लीलावई कहा, पउमिसि रिचरिउ श्री चन्द का कथा-कोश, द्वाविंश परास्त, समराइच्चकहा, वन्नलग्ग, भाविसयत्त कहा आदि कई कथा-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

राजस्थानी भाषा में अन्य कई विषयों के साथ प्राचीन भारतीय कथा-साहित्य के अनुवाद भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। साथ ही राजस्थानी भाषा में स्वतन्त्र रूप में भी कथा-साहित्य का निर्माण हुआ है। राजस्थानी कहानियां वास्तव में मौलिकता और सुविकसित कलात्मक लेखन शैली के कारण भारतीय साहित्य में विशेष आदरणीय स्थान की अधिकारिणी है। राजस्थानी कथा-साहित्य की अनूठी रचनाओं से सिद्ध होता है कि राजस्थानी भाषा पद्य-लेखन के साथ ही गद्य-लेखन में भी सम्पन्न है।

राजस्थानी कथा-साहित्य का विषय-वर्गीकरण पांच भागों में किया जा कता है—

१. प्रेम विषयक कथाएं ।
२. वीरता की कथाएं ।
३. हास्यरसात्मक कथाएं ।
४. भक्ति विषयक कथाएं, और
५. मिश्रित, जिनमें कई विषयों का समावेश हुआ हो ।

राजस्थानी कथाओं में चरित्र-चित्रण, घटना-विकास और कथा-वस्तु के निर्माण की सुविकसित मौलिक शैली का निर्वाह हुआ है। राजस्थानी भाषा में लिखित हजारों कहानियां कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं और इसीलिये इनका जनता में व्यापक प्रचार है।

हमारी अंग्रेजी दासता के फलस्वरूप हिन्दी भाषा में कथा, निबन्धों, नाटकों, और उपन्यासों की भांति लघुकथाओं में भी पूर्णरूपेण अंग्रेजी शैली का अनुसरण किया जा रहा है। इस प्रकार न तो हम हिन्दी कहानियों को मौलिक कह सकते हैं और न ही विश्व-साहित्य में हिन्दी कथाओं का कोई आदरणीय स्थान हो सकता है। जिस प्रकार राजस्थानी काव्यों और नाटकों में पूर्णरूपेण मौलिक भारतीयता का अनुसरण किया गया है, उसी प्रकार राजस्थानी कथा-शैली भी भारत की अपनी कथा-शैली है, और इस शैली को अपना कर ही हिन्दी कथाएं भी विश्व साहित्य में आदरणीय हो सकती हैं। अन्यथा हिन्दी कथाओं को अंग्रेजी का अनुकरण ही माना जावेगा।

वास्तव में आज राजस्थानी कथाएं ही भारत के कथा-साहित्य का समुचित रूप से प्रतिनिधित्व करने की अधिकारिणी हैं, और इस विषय में किया गया कार्य सर्वथा हितकर होगा।

जलाल गहाणी, वहलेम और सूरो-खींवरो नामक रचनाएं राजस्थानी कथा साहित्य की अनमोल मणियां हैं जिनको अब हिन्दी शब्दार्थ, टिप्पणियां और अनुवाद सहित साहित्य संसार प्रकाशित करने की आवश्यकता है। राजस्थानी ग्रन्थों का संभवत: ऐसा कोई प्रमुख ग्रंथभण्डार नहीं होगा जिसको इन कथाओं की प्रतियां न हों और ऐसा कोई राजस्थानी कथाओं का ज्ञाता नहीं होगा जिसको इन कथाओं की जानकारी न हो। इससे इन कथाओं की उत्कृष्टता और लोकप्रियता ज्ञात होती है।

राजस्थानी साहित्य के अध्येयताओं के लिये "जलो" जलाल शब्द सुपरिचित हैं। "जलो" राजस्थानी लोकसंगीत का एक विशेष प्रकार है। जला सम्बन्धी निम्नलिखित गीत राजस्थानी जनता में विशेष प्रचलित हैं—

१. जलो म्हारी जोड़ रो उदियापुर माले रे।[1]
२. जला रे आंवलियां पाकी ने अब रुत आई रे।[2]
३. जल्ला रे! म्हें तो राज रा डेरा निरखण आई।[3]
४. सैंयां मीरी रा आयोड़ा सुणोजै रे जलाला।[4]
५. हांरे जलाल ऊगण दिसां रे करहलियां कहं'क्या रे।[5]

जलाल संबंधी राजस्थानी भाषा में लिखित दूहे भी मिलते हैं।[6] जैसलमेर की ओर मांड राग के अन्तर्गत जलाल सम्बन्धी दूहे अधिक गाये जाते हैं।

जलाल कौन था, और राजस्थानी साहित्य में जलाल अथवा जल्ला शब्द का कैसे प्रचलन हुआ? इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित ज्ञातव्य मिलता है—

"मुगल सम्राट अकबर का पूरा नाम अबुल फतह जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर बादशाह था। जल्ला. जलाल, जलालो इसी जलालुद्दीन शब्द के अपभ्रंश हैं। जो अब पति शब्द के स्थान में प्रयोग होते हैं। कहते हैं कि अकबर को संकेत कर यह गीत उस समय रचे गए थे। इस बादशाह का उस समय के राजपूत राजाओं पर बड़ा भीतरी प्रभाव पड़ा था। फारसी तवारिखों तथा मारवाड़ी ख्यातों से ज्ञात होता है कि सीसोदिया (गुहिलोत) तथा चौहाण दो ही खापें उसके भीतरी प्रभाव से बची थी। इन बादशाहों का यह प्रभाव करीब सम्वत् १७७१ विक्रमी सम्राट फर्रुखसियर तक नरेशों पर बना रहा।"[7]

जलाल गहाणी री ज्ञात से बात होता है कि उपरोक्त मत सर्वथा निराधार और भ्रम उत्पन्न करने वाला है। वास्तव में ढोला मारू, महेंद्र मूमल, निहालदे-सुल्तान आदि की तरह जलाल गहाणी और बूबना भी प्रेमी युगल के रूप में प्रसिद्ध हो गए हैं। जला गीत और दूहे भी मुख्यतः जलाल गहाणी की कथा से ही

---

१. राजस्थान के लोकगीत (श्री सूर्यकरण पारीक, पंडित नरोत्तम दास जी स्वामी और ठा० रामसिंह जी द्वारा सम्पादित पृ० १, और मारवाड़ के ग्रामगीत श्री गेहलोत पृ० २२।
२. मारवाड़ के ग्रामगीत पृ० ५४।
३. वही पृ० १५८।
४. वही पृ० १६८।
५. वही पृ० १७०।
६. अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, कटैलग आफ मेन्युस्क्रिप्टस्, पुस्तकालय संख्या ८१वीं।
७.. मारवाड़ के ग्रामगीत, गेहलोत पृ० १५८।

संबन्धित हैं और जैसे ढोला पति के रूप में प्रयुक्त होता है वैसे ही जला, जल्ला, जलो और जलाल भी पति के पर्यायवाचि शब्द हैं।

जलाल गहाणी री वात में जलाल और बूबना का प्रेम-चित्रण किया गया है। थठा भखर के बादशाह मृग तमायची के दरबार में उसका भानजा जलाल भी पहुंचता है। सिन्ध समुद्र के बादशाह की ओर से उसकी दो शाहजादियों मूंमना और बूबना के विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव आते हैं। कई बेगमों के होते हुए भी बादशाह छोटी शाहजादी से स्वयं विवाह करने का आग्रह करता है। सिध समुद्र के सामन्त कहते हैं कि बूबना का विवाह जलाल से किया जावे। किन्तु बादशाह के आग्रह से बूबना का विवाह बादशाह से और मूंमना का विवाह जलाल से किया जाता है।

विवाह के बाद जलाल बूबना के ध्यान में रहता है और बूबना भी जलाल से मिलने को उत्सुक रहती है। दोनों चतुराई से गुप्त रूप में मिलने लगते हैं। कभी जलाल फूलों के टोकरे में छिप कर और कभी रस्से के सहारे बूबना के महल में आ जाता है। बादशाह और जलाल शिकार के लिए रात को जंगल में ठहरते हैं तो भी जलाल तेज घोड़े पर चल कर बूबना से मिल आता है। बादशाह जलाल को बूबना के पास पकड़ने में असफल रहता है। फिर जलाल गिरवर गढ़ के कठिन युद्ध में भेजा जाता है। किन्तु वह अपनी चतुराई से जीत जाता है। लौट कर जलाल कई बाधाओं को पार करता हुआ बूबना से मिलता है। फिर जलाल को शामियाना के तनाव काट उसके नीचे दबा कर मारने का भी प्रयत्न असफल रहता है क्योंकि शायिमाना गिरते समय जलाल अपनी कटार ऊंची कर देता है, जिससे शामियाना फट जाता है, और वह बच जाता है। फिर सोचा जाता है कि जलाल बूबना के मरने की खबर सुने तो मर जावे। जलाल के मरने की झूठी खबर बूबना को दी गई जिससे वह तुरन्त मर जाती है। बूबना को मरी हुई जान कर जलाल भी मर जाता है। दोनों प्रेमियों को साथ ही दफनाया जाता है।

कहानी को सुखान्त बनाने के लिये शिव-पार्वती द्वारा दोनों प्रेमियों को जीवित किया जाता है। शिव जी के आशीर्वाद से जलाल अपने पूर्वजों का थठा खार का राज्य प्राप्त करता है, और दोनों प्रेमी आनन्द से रहते हैं।

कथा के पात्र मुसलमान हैं किन्तु वे भारतीय संस्कृति में रंगे हुए चित्रित किए गए हैं। जैसे विवाह प्रस्ताव के रूप में नारियल भेजना, विवाह में तोरण मारना, बूबना का जलाल से युद्ध में जाते समय श्रावणी तीज पर लौट आने का वचन लेना और अन्त में शिव-पार्वती का प्रकट होना आदि घटनाएं भारतीय संस्कृति से सम्बन्धित हैं। भारतीय लोक-कथाओं में शिव-तार्वती का प्रकट. होना, पार्वती के हठ के अनुसार

शिव जी का मृत व्यक्ति को जीवित करना । इस प्रकार दुःखान्त कहानी का सुखान्त हो जाना सामान्य बात है । "जलाल गहाणी री वार्ता" में इसी परम्परा का पालन किया गया है ।

प्राचीन कथाओं में यथा अवसर पद्यों का प्रयोग एक सामान्य बात है । पद्यों के प्रयोग से कथा में सरसता और सजीवता का संचार होता है । प्रस्तुत वार्ता में कई दूहों का प्रयोग किया गया है । दूहों के प्रयोग से वार्ता के संवाद भी वास्तव में उत्कृष्ट बन गये हैं । बूबना और मूंमना संवाद, जलाल और बूबना संवाद, बूबना और सास संवाद, जलाल और बूबना की दासी नेत्रवांदी का संवाद । जलाल और उसके भाई थेबां के संवाद, जलाल और बादशाह के सवाद, दूहों में ही हुए हैं और यह उक्ति-चातुर्य अनूठी सूझ तथा काव्य-सौन्दर्य के अच्छे उदाहरण हैं ।

प्रस्तुत कथा में घटनाओं का विकास पूर्णतया स्वाभाविक हुआ है । चरित्र-चित्रण सजीव है और भाषा शैली भी उत्कृष्ट है ।

कहानी का वातावरण पूर्णरूपेण शृंगारमय है । इसमें संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का समुचित निर्वाह किया गया है । राजस्थानी भाषा-साहित्य की एक विशेषता यह है कि तीव्र शृंगार-वर्णन में भी कहीं अश्लील चित्रण कर सामाजिक मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया जाता है । प्रस्तुत कहानी शृंगारिक होते हुए सामाजिक और सुरुचिपूर्ण है ।

बहलेम री वार्ता दिल्ली-सम्राट फिरोजशाह से सम्बन्धित है । बादशाह की आज्ञा से दिल्ली के हीरा-पीरा शाह, मलूम बेग और मामघडूका जाट काबा-गजनी जाते हैं । गजनी के शाहजादे का विवाह दिल्ली की शाहजादी सिहाणी से करते हैं । सिहाणी के दो पुत्र होते हैं, जिनका नाम रायब और सायब दिया गया है । इस कहानी का अपर नाम रायब सायब री वार्ता भी प्रचलित है । फिर मामघडूका अपने बन्धुओं के साथ गजनी जाता है और खेती के सम्बन्ध में मनमुटाव होने पर गजनी राज्य को जीत लेता है । सिहाणी अपने पुत्रों को लेकर दिल्ली आ जाती है । रायब-सायब बड़े होने पर बदला लेने के लिये गजनी पहुंचते हैं । सायब का विवाह मामघडूके की पुत्री पलराणी से कर लिया जाता है । अन्त में मामघडूका और रायब-सायब के बीच युद्ध होता है जिसमें पलराणी अपने भाईयों और पिता के विरुद्ध रायब-सायब की सहायता करती है । अपने पति के मारे जाने पर पलराणी स्वयं अपने भाईयों को मार कर अग्नि-प्रवेश करती है । रायब मामघडूका को मारकर राज्य पर अधिकार कर लेता है ।

वहलेम री वार्ता में रायब-सायब की वीरता का विशेष वर्णन किया गया है। रायब की वीरता का अब तक निम्नलिखित दुहाही प्रसिद्ध है—

रायब उट्ठ कमाण धर, मूंछ मरोड़ म रोय।
मरदां मरणो हक्क है, रोणो हक्क न होय॥

प्रस्तुत वार्ता में इस दोहे का अन्य रूप निम्नलिखित है—

रायब ऊठ कबाण ग्रहि, मूंछ मरोड़ म रोय।
भार परन्ते दुधरे, सहे स मारी होय॥

ऐसे कई दोहे इस वार्ता में मिलते हैं। साथ ही कुछ निशांणी छंद और चन्द्रायणा भी हैं।

सारी कहानी चमत्कारिक प्रसंगों से भरी हुई है। मुरारि अंगूठी, पीवली घोड़ी, हिन्डोल दीपक और मल्लार राग, रहस्यमय समुद्र यात्रा, जादुई महल आदि के चमत्कारों का विशेष वर्णन पाठकों की उत्सुकता बढ़ाने में सहायक होता है।

वार्ता में मलूम वेग का वाक्‌चातुर्य रायब की वीरता, मामधडूका की अवसरवादिता और पलराणी की पति के प्रति अटूट निष्ठा का यथार्थ चित्रण किया गया है। मलूम वेग और हीरा-वीरा शाह स्वामी भक्त हैं। किन्तु मामधडूका मुरारि अंगूठी बादशाह को नहीं देकर गजनी चला जाता है। वहां अपने परिश्रम की कृषि से उत्पन्न आय का उचित बटवारा नहीं होता है तो प्रतिरोध करता है। सायब मामधडूके की पुत्री पलराणी से विवाह कर अन्त में अपने पिता के घाती से सन्धि कर लेता है किन्तु रायब उसके चक्कर में नहीं आता है। पलराणी बड़ी ही चतुराई और साहस से अपने पति के संहारक को मारकर बदला लेती है और फिर स्वयं अपने हाथ काट कर अग्नि-प्रवेश करती हैं। इस प्रकार यह कहानी दुःखान्त है।

सूरै खींवरै री वार्ता में कान्धल जी के पुत्र सूरा और खींवरा, चंवर ढाल घोड़ी के लिये राजूखान से हुए संघर्ष में वीरता पूर्वक लड़ते हुये मारे जाते हैं। सूरा, सिंवरा के पुत्र वरजांग और वेरसी अन्त में राजू खान को मार कर बदला लेते हैं। यह कहानी वर्णन प्रधान हैं और इसमें राजपूतों के दरबार का, उनके रहन-सहन का, उनकी उदारता का, फकीर के रूप में राजू खान की यात्रा का और युद्ध आदि का सजीव वर्णन है। सूरा-खींवरा का मीणा जिस युक्ति से चंवर ढ़ाल घोड़ी ले आता है वह प्रसंग आकर्षक है। राजस्थानी भाषा में अभिव्यंजना-शक्ति बड़ी प्रबल है, इस तथ्य का प्रस्तुत कहानी एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

—:०—

: ११ :

राजस्थानी गद्य-साहित्य

राजस्थानी गद्य के रूप १३ वीं शताब्दी से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप में उपलब्ध होते हैं। अनेक भारतीय भाषाओं में प्राचीन गद्य का अभाव है किन्तु राजस्थानी में प्राचीन गद्य के विविध रूप प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

प्राचीन राजस्थानी गद्य के मुख्य रूप इस प्रकार हैं--

(क) धार्मिक गद्य।

(ख) ऐतिहासिक गद्य।

(ग) मनोरंजनात्मक गद्य।

(घ) अभिलेखों का गद्य।

(ङ) व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष आदि विषयक गद्य।

१. धार्मिक गद्य

प्राचीन राजस्थानी धार्मिक गद्य मुख्यतः (अ) जैनियों और (आ) ब्राह्मणों द्वारा रचित है।

(अ) जैन गद्य के रूप निम्नलिखित हैं—

(१) टीका—जैन टीकायें टब्बा और बालावबोध के रूप में लिखी गई। टब्बा के अन्तर्गत मूल पाठ पत्र के मध्य में लिखा गया है और उसकी विविध टीकाओं का रूप टब्बा हाशिये पर लिखा गया है। टब्बा का रूप बहुत संक्षिप्त होता है। टब्बा का उदाहरण इस प्रकार है—

"जेहे परब्रह्म केवल ज्ञान प्रामिउ। दुर्लभ मुक्तिरूप लाभ छई जेह नइ। जेहे संरंभ पदार्थनु आरोप मूंकयउ। त्रिभुवन रूप घर धारिवा स्तम्भ समान।

---

१. संवेगदेव गणि रचित "चऊसरण पयन्ना टब्बा" ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

ते सिद्ध शरणि हूजे हे आरंभ छांडिया । इम सिद्धनइं शरणि करो । न्याय सहित ज्ञान नूं कारण ।"[1]

(२) बालावबोध प्रकार की टीका विस्तृत और सुबोध होती है। मूल पाठ का विवेचन प्रसंगानुकूल विविध दृष्टान्तों सहित विस्तृत होता है। बालावबोध का एक उदाहरण इस प्रकार है—

"महापुर नगर। भोज राजा। लक्ष्मण श्रेष्टि। तेहनइं नन्दा बेटी श्राविका। बाप वर चिंता करइ। तिसइं बेटी कहइ। जीनिइं दीवइं काजल नहीं कालिकि न हूइं, जिहां दसा वाटि पूटइजि नहि, जे सदैव स्थिर हुइं, जिहां चोपड़ घूटइ नहीं, एहवुं दीवउ जेहनइं घरि सदा रहइं ते वर टाली वीजउ न परणइं। सेठि चिंतां पडिउं।"

३. औक्तिक ग्रन्थ—

औक्तिक ग्रंथों में मुख्यतः व्याकरण का विवेचन होता है। औक्तिक ग्रन्थ का उदाहरण इस प्रकार है—

"करिस्यइं लैसिइं देस्यइं इत्युच्चारे भविष्यत्काले भविष्यंती परस्मै पदं। करीसिइ लीजिसइ इत्युच्चारे आत्मने पदं ॥७॥"[2]

४. कथा ग्रन्थ—

जैन साहित्यकारों ने अनेक गद्य-कथाओं का निर्माण किया जिनमें धार्मिक सिद्धान्तों को जनता के लिए सरलता पूर्वक समझाया गया है। जैन-कथा का उदाहरण इस प्रकार है—

"तुरूमिणि नगरीइं दत्त ब्राह्मणि महुन्तइ राज्य आपणइ वसि करो आणिलु जितशत्रु राजी काढ़ी आपणपइ राज्य अधिष्ठिउं। धर्म्मनी बुद्धिइं घणा याग यजिया। एक बार दत्त ना माउता श्री कालिकाचार्य गुरूमाणेज राजा मणी तीणइं नगरि आविया। मामउ मणीदत्त गुरू कन्हइ गिउ। भाग नुं फल पूछवा लागु। गुरे कहिउं जीव दया लगइ धर्म्म हुई।"[3]

---

१. षआवश्यक बालाव बोध (१६ वीं शताब्दी) ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

२. जयसागरोपाध्याय–कृत "उक्ति समुच्चय" (१७ वीं शताब्दी) ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

३. कालिकाचार्य की कथा (संवत् १५६७, १५११ ई०) डॉ० एल० पी० तेस्सितोरी द्वारा "नोट्स ऑन दी ओल्ड वेस्टर्न" राजस्थानी, इंडियन एन्टीक्वेरी १९१४ से १९१६।

५. चरित्र ग्रन्थ—

जैन लेखकों ने चरित्र-ग्रन्थों में अनेक तीर्थंकरों, महापुरुषों और सतियों आदि के चरित्र राजस्थानी गद्य में प्रस्तुत किये हैं। सीता-चरित्र का उदाहरण इस प्रकार है—

"इहैव भरतक्षेत्रे मिथिला नगरम्यां नगरी रहिष्यमिए समृद्धा चउरासी चौहटा बहत्तरि पावटा अनेक बावड़ी पुष्करणी कुयार तलाव महाद्रह खण्डोखली तिका संख्या काई नहीं। अति ही मनोहर प्रवान इत्यादि सरोवरादि फल फूल पत्र कूपल लतायें करि विराजमान वनखण्ड वृक्ष करि विराजते शोभते।"[१]

६. पट्टावली और गुर्वावली—

जैन लेखकों ने पट्टावली और गुर्वावली के अन्तर्गत क्रमशः अपनी पट्ट-परम्परा और गुरु-परम्परा का राजस्थानी गद्य में वर्णन किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से ऐसी रचनाओं का विशेष महत्व है। पट्टावली का उदाहरण—

"पंच नदी साधक सिंधु देशि अनेक अवदात कारक, श्री जिनदत्त सूरि संवत् १२११ आसाढ़ि सुदि ११ अजयमेरू नगरी स्वर्ग प्राप्त हुआ। सम्वत १२०५ वर्षे जिनसेखर सूरि हूंति रुद्रपल्लीय गच्छ हूअउ। श्री जिनदत्त सूरी नइ पाटि संवत् ११९३ भादवा सुदी ८ जेहनउ जन्म रासल श्रावक देल्हदेवी नउ पुत्र संवत् १२०३ फागुण सुदी ९ दिने।"[२]

गुर्वावली का उदाहरण इस प्रकार है—

"जिनहंस सूरि नइ वारइ संवत् १५६६ श्री शान्ति सागराचार्य थकी आचार्या गच्छ जुअउ थयउ। तेह नइ पाटि श्री जिनमाणिक्य सूरि संवत् १५८२ भाद्रवा सुदी ९ वला ही देवराज कारित नन्दी महोत्सवइ। श्री जिनहंस सूरइ आपणइ हाथि थाप्या।"[३]

७. सीख ग्रन्थ—

जैन लेखकों ने अनेक गद्य-ग्रन्थ धार्मिक शिक्षा प्रचार की दृष्टि से लिखे। ऐसे ग्रन्थों में धार्मिक नियमों का विस्तृत वर्णन है। उदाहरण—

---

१. "सीता चरित्र भाषा" श्री अगरचन्द नाहटा, मरु भारती, "खोये पन्ने" निबन्ध ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

२. "खरतर गच्छ-पट्टावली" ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

३. खरतर गच्छ गुर्वावली, ह० प्र० अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

"कोइनी निंदा करवी नहिं। कोइ नु मर्म प्रकाशवु नहिं। कोई साथे इर्ष्या करवी नहिं। सर्व सार्थ मित्र भाव राखवो जी। कोई साथे शत्रु भाव राखवो नहिं। सदाय लज्जावंत रहेवु जी। कदापि निर्लज्जता धारण करवी नहिं।"[1]

८. विज्ञप्ति पत्र, नियमपत्र और समाचारी आदि –

जैन लेखकों ने साधु-साध्वियों और श्रावकों आदि के लिये विभिन्न विषयक व्यवहार सम्बन्धी नियम-पत्रों में लिखे हैं। नियमपत्र का उदाहरण इस प्रकार है—

"साधु साध्वी नइ जे पुस्तक पाना जोइयइ ते भिन्न-भिन्न श्रावकनइ न कहणा, यथायोग्य ते संघनइ कहणा, श्री संघई यथायोग्य चिन्ता करणी।"[2]

समाचारी का उदाहरण—

"घनागरा मांहि घाणा सूंठ हरड़इ दाख.खारक ऐ सहु एक द्रव्य। परंद्रव्य पचखाण ना धणी जुदा जुदा न खाइ, एकठा करी खाइ तउ एक द्रव्य।"

विज्ञप्ति पत्रों में विभिन्न नगरों के श्रावकों की ओर से आचार्यों की सेवा में चातुर्मास-निवास आदि के लिये निवेदन किये गये है। अनेक विज्ञप्ति पत्र सचित्र भी उपलब्ध होते हैं जिनमें सम्बन्धित नगरों के विभिन्न दृष्यों का चित्रण होता है।[3]

विज्ञप्ति पत्र के गद्य का उदाहरण इस प्रकार है—

"सभी भट्टारकजी री पूज्य श्री श्री जिनभक्तिजी रे छै। करावत वणारसजी श्री श्री नन्दलालजी पठनार्थ ॥६॥ मथेन अखैराम जोगीदासोत श्री बीकानेर मध्ये चित्र संजुक्तं ॥ श्री श्री ॥"[4]

(आ) जैनेतर धार्मिक गद्य—

जैनेतर धार्मिक गद्य पौराणिक विषयों पर और ईसाई पादरियों द्वारा राज-

---

१. हित शिक्षा विषे छुटा बोल, श्री मत्पार्श्वचन्द प्रकरणमाला, भाग १, प्र० का० १९१३।

२. (क) युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि, श्री अमरचन्द नाहटा, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, परिशिष्ट (क)
(ख) राजस्थानी भाषा और साहित्य, डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, पृष्ठ ३४१।

३. (क) राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, केन्द्रीय संग्रहालय, जोधपुर। (ख) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर।

४. बीकानेर का एक सचित्र विज्ञप्ति लेख, भंवरलाल नाहटा, राजस्थान, भारती, भाग–३, अंक ३–४, जुलाई १९५३ पृ० ६८।

स्थानी भाषा की विभिन्न बोलियों-मेवाड़ी, मारवाड़ी, बीकानेरी, ढूंढाड़ी, हाड़ौती तथा मालवी के अनुवादों के रूप में उपलब्ध होता है।

गोरखपंथी राजस्थानी गद्य का एक उदाहरण उपलब्ध होता है जिसको आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लगभग १४वीं शताब्दी का माना है—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दंडवत है। है कैसे परमानन्द आनन्द स्वरूप हैं सरीर जिन्हिको। जिन्हिके नित्य गाये ते सरीर चेतन्नि अरु आन्नदमय होतु है। मैं जु हों गोरिख सो मछंदरनाथ को दंडवत करत हों। हैं कैसे वे मछंदरनाथ। आत्माजोति निस्चल हैं अन्तःकरन जिनकौ अरु मूल द्वार है छइ चक्र जिनि जाकी तरह जानै। अरु युग काल कल्प इनिकी रचना तत्व जिनि गायौ। सुगन्ध को समुद्र तिनि को मेरी दंडवत। स्वामी तुमै तो सतगुरु। अम्है तो सिख शब्द एक पूछिबौ, दया करि कहिबौ मनि न करिबौ रोस।"[1]

रामायण, महाभारत, भागवतादि विविध पुराणों, व्रतमहात्म्य आदि के राजस्थानी गद्यानुवाद प्रचुर मात्रा में हस्तलिखित ग्रंथ-संग्राहालयों में प्राप्त होते हैं।

२. ऐतिहासिक गद्य

ऐतिहासिक गद्य निम्नलिखित रूपों में मिलता है—

(क) ख्यात—सीसोदियां री ख्यात, राठौड़ा री ख्यात, कछावा री ख्यात, मुहणोत नैणसी री ख्यात, बांकीदास री ख्यात, जाडेचां री ख्यात, महाराजा मानसिंह री ख्यात, जोधपुर री ख्यात, उमरावां री ख्यात, बीकानेर री ख्यात, देवलियै रा धणियां री ख्यात, चहवांणां सोनगरां री ख्यात, आदि।

(ख) वात—राणै उदैसिंह री वात, हाड़ा सूरजमल री वात, राव बीकैजी री वात, जैसलमेर री वात, पाबूजी री वात, राणा कुंभा री वात, राव लूणकरण री वात, सोढ़ो री वात, आदि।

(ग) विगत—गैहलोतां री चौवीस साखां री विगत, मेवाड़ रा माखरां री विगत, सीसोदियां री विगत, जोधपुर-बीकानेर टीकायतां री विगत, जोधपुर रा निवाणां री विगत, गढ़ कोटां री विगत, कछावा सेखावता री विगत, आदि।

(घ) पीढ़ी—ईडर रा धणी राठौड़ां री पीढ़ियां, राठौड़ां रे खांपां री पीढ़ियां, हमीरोत भाटियां री पीढ़ियां, आहाड़ा री पीढ़ियां, मायलारी पीढ़ियां, चन्द्रावतां री पीढ़ियां इत्यादि।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, हिन्दी गद्य पृ० ४०३।

(ङ) **वंसावली**—राठोड़ा री वंसावली, राजपूतां री वसाली, जैसलमेर-भाटीरी वंसावली, बीकानेर रै राठोड़ राजावां री वंसावली, उदैपुर रा राजावां री वंसावली, जैसलमेर रा भाटी महारावल री वंसावली आदि।

(च) **दवावैत**—नरसिंहदास गौड़ री दवावैत, जिन सुख सूरिजी की दवावैत, जिनलाम सूरि दवावैत, वैत महाराणाजी श्री शंभूसिंह जी री, राव बखतावर री कही।

(छ) **वचनिका** – अचलदास खीची री वचनिका (शिवदास कृत), वचनिका राठौड़ रतनसिंहजी री, महेसदासौत री (जग्गा खिड़िया रचित)।

(क) ख्यात

ख्यात शब्द इतिहास का सूचक है। मुसलमान इतिहासकारों के अनुकरण में राजस्थानी इतिहासकारों ने राजस्थानी गद्य में विभिन्न राजवंशों से सम्बन्धित अनेक ख्यातें लिखी हैं। ख्यात के गद्य का एक उदाहरण इस प्रकार है—

"माछलां रा मगरा सूं उतर नै सहर छै। दीवांण रा मोहल पीछोला री पाल ऊपर छै। मोहला थी आथवण नू तलाव लगतौ सहर छै। कोस दो रै फेरे छै। सहर री एक कांनी माछला रौ मगरौ छै। एकण कांनी खरक दिस सिसरवां रो मगरौ छै। तलाव घणौ भरीजै तरै पांणी मगरै तांई जाय छै।"[1]

(ख) वात

वात अथवा वार्ताएं ख्यात से छोटी होती हैं। बहुधा एक ख्यात के अन्तर्गत अनेक वातों अथवा वार्ताओं का समावेश रहता है। वात और वार्ताएं काल्पनिक भी होती हैं। कथानक, विषय, भाषा, रचना-प्रकार, शैली और उद्देश्य की दृष्टि से वात अथवा वार्ताएं अनेक प्रकार की मिलती हैं।[2] वात का एक उदाहरण इस प्रकार है—

"पिंगल राजा सांवतसी देवड़ा नूं आदमी मेल कहायो-अबै थै आणौ करौ। तद सांवतसी घणों ही विचारियो पण बात बांध कोई बैसे नहीं। कुंवरि नै ऊझणौ दे मेलीजे। तद ऊंट, घोड़ा, रथ, सेजवाल, खवास, पासवांन साथे हुआ सो उदैचंद खमै नहीं।"[3]

---

१. मुहता नैणसीरी ख्यात, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

२. राजस्थानी शब्द कोष, संपादकीय प्रस्तावना, १८६–१६०।

३. ढोला मारू री वात, लि० का० सं० १८७२ राजस्थानी शब्दकोष, संपादकीय प्रस्तावना पृ० १६८।

(ग) विगत

विगत में किसी विषय का विस्तृत वर्णन होता है। विगत का उदाहरण इस प्रकार है—

"मोहिल अजीत ने रांगो वछो इयांरो राजस्थान लाडनु नें छापर हुतो ने द्रुणपुर मोहिल कन्हो वस्तो पछे महाराई श्री जोधजी सगलानु मारि नें मोहिले रे री धरती ले नें राजि श्री वीदेजी नुं रापीयो।"[1]

(घ) पीढ़ी–(ङ) वंशावली

पीढ़ी और वंशावली में प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्ति की वंश-परम्परा अथवा सम्पूर्ण वंश का गद्यात्मक वर्णन होता है। ऐसी रचनाओं में सामान्य व्यक्तियों के नामोल्लेख मात्र होते हैं किन्तु प्रमुख व्यक्तियों का वर्णन विशेष होता है। पीढी का उदाहरण इस प्रकार है—

"नीरवाणा री साप-निरवांण पैहली देवड़ा था। देवड़ांया निरवाण कहाणा निरवांण सीरोही था आय कवरसी दाहलीया कान्हा पांडेलो-लीयो उदैपुर लीयो पछै वसीगांव सोलहर पांडेला नजीक छै तठै रापी। पछै कछवाहो रायसल सुजावत लपु मोजावत ने मोपा हेमा रा कन्हा पांडेलो लीयो। तरै निरवाणा था पांडेलो छूटो..........।"[2]

वंशावली का उदाहरण इस प्रकार है—

"पछै मुलतान री फौजा नें दिल्ली री फौजा लै नें राउ चूंडै उपर नागोर आयो। राउ चूंडो नागोर मारिया। पछै केल्हण अपूठो आयो।"[3]

(च) दवावैत, वैत

हमारे साहित्य में दवावैत संज्ञक रचनाओं की एक सुदीर्घ परम्परा है।[4] फारसी और तुर्की आदि मुस्लिम भाषाओं में 'दुबैती" का प्रयोग उपलब्ध होता है। "तारीखे फिरोजाशाही" के अनुसार दिल्ली का खिलजी सुल्तान जलालुद्दीन

---

१. (क) ए डिस्क्रिप्टिव केटलग, खंड–१, भाग–२, डॉ० एल० पी० तैस्सीतोरी पृ० १९–२०।

(ख) ह० प्र० सं० २३३, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, वीकानेर।

२. निखाणा री पीढ़ियां, डेस्क्रेप्टीव केटलॉग सेक्सन–१, भाग–१, डॉ० एल० पी० तेस्सीतोरी पृ० ६९।

३. राठौड़ां री वंसावली (सं० १६००) राजस्थानी शब्दकोष पृ० १९२।

४. दवावैत संज्ञक हिन्दी रचनाओं की परम्परा (श्री अगरचन्द नाहटा), भारतीय साहित्य, विश्वविद्यालय, आगरा, अप्रेल १९५६ पृ० २१७।

भी "दुवैती" लिखता था।[1] दववैत-शैली के उद्गम और विकास के विषय में हमारे विद्वान अब तक मौन हैं। ज्ञात होता है कि "दुवैती" के प्रभाव से ही दवावैत शैली का प्रचलन हुआ है। दवावैत के दो भेद हैं—गद्य वन्ध और पद्य वन्ध।[2] गद्य बन्ध में मात्राओं आदि का नियम नहीं होता और पद्यबन्ध में यह नियम होता है। दवावैत में तुकान्त वाक्य लिखे जाते हैं। दवावैत शैली की अनेक रचनाओं में खड़ी बोली का प्रभाव विशेष द्रष्टव्य है। दवावैत का उदाहरण इस प्रकार है—

"आ बात सुणतां ही डेरा बारै कीधा। अर गढ़ तोड़वा का सामान सारा ही साथ लीधा। बड़ी-बड़ी तोपां घणा जूटां थी खींची हाले। जिकां रे पाछै मस्त हाथी टला देण नूं चालै। बांण। रा ऊंट ठाटड़ियां का थाट। जिकां में बड़ी छोटी केई घाट।"[3]

"ऐसा गढ़ जोधांण और सहर का :रसाव जिसके चौतरफ कौं वागीचूं का डंबर और दरियाऊं का वणाव। पहिले वागीचूं की सोभा कहिके दिखाया पीछे दरियाऊ की तारीफ जिसके गुण गाया।"[4]

तीजों की त्यारी हर सन सन पै होती थी।
सो भी हम देषी अन उपमा तै स्होती थी॥
बारी महलू में छिब अवकै अवलोक की थी।
परदे चग चदवा झल झलरों की झांपी थी॥
पांनुस की पंकत लग वत्यों बनवाई थी।
नीकै अध उरध कै झारन रुसनाई थी॥[5]

(छ) वचनिका

वचनिका के पद्यबन्ध और गद्यबन्ध नामक दो भेद दवावैद की तरह ही बताये गये हैं—

---

१. खिलजी कालीन भारत, पृ० १५।
२. रघुनाथ रूपक गीतां रो (सं० मेहताषचंद खारेड़)।
३. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग—२, सं० पुरुषोतमलाल मेनारिया, पृ० ३६।
४. सूरज प्रकाश, सं० १७८७, संपादक—सीताराम जी लालस, राजस्थान प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।
५. वेत महाराणाजी श्री शंभूसिहजी री, राव बखतावर री कहीं, राजस्थान विद्या-पीठ, साहित्य-संस्थान, उदयपुर।

वैत दवा जिम वचनका, पद गद बंध प्रमाण।
दुय दुय विध तिणरी दखूं, सुगर्जै जका सुजाण॥[1]

प्राप्त वचनिका संज्ञक रचनाओं में गद्यबन्ध और पद्यबन्ध दोनों ही प्रकार की रचनिकाओं का मिश्रण हुआ है। वचनिका में खड़ी बोली का प्रभाव नहीं होता—

'पग पग पडलि पडलि हस्ती वी गज घटा। तीं अपरि मात-सात सै जोध धनक धर मांवठा। मात-सात ओलि पाइक की वैठी। मात सात ओलि पाइक ऊठी। खेडा उडण मूद फरफरी चुंहचंकी टांड टांड ठहरी।"[2]

३. मनोरंजनात्मक गद्य

मनोरंजनात्मक गद्य में मनोरंजनात्मक कथा-वर्ताओं तथा वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य का समावेश होता है। मनोरंजनात्मक कथाओं में प्रेम, वीरता, भक्ति और हास्य की अनूठी योजना होती है। वार्ताकारों ने काल्पनिक प्रयोगों द्वारा ऐसी कथाओं में रहस्य-रोमांच की सृष्टि भी की है। हस्त-लिखित ग्रन्थ-भंडारों में मनोरंजनात्मक राजस्थानी कथाओं के अनेक संग्रह-ग्रंथ उपलब्ध होते हैं। इन कथाओं में गद्य के साथ कहीं-कहीं पद्य की छटा भी प्रभावशालिनी होती है। ऐसी वार्ताओं में ब्रज, गुजराती और उर्दू के प्रभाव भी कहीं-कहीं मिलते हैं—

"पछै बामण सीदो ले नै तलाव उपर रोटी करण वैठो। जठे तलाव री तीर एक मीडक आयो। आवे न बामण थी कही। देवता तोंहे तो में अठे कदी नहीं देख्यों। तूं सथे जाअ है। जनी बांमण कहे। हूं उजीणा री छूं नै गया जी जाऊं छूं।"[3]

वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य-रचनाओं में अनेक विषयों का मनोहर और सर्वांगपूर्ण वर्णन होता है। पर्दैकविंशति, पृथ्वीचन्द चरित्र अपरनाम वाग्विलास, माणिक्यसुन्दर सूरि रचित कुतुहलम्, सभाशृंगार, मुतकलानुप्रास, राजानराउतरो वात वणाव, खींची गंगेव नीबावतरी दोपहरो आदि वर्णनात्मक रचनायें विशेष उल्लेखनीय हैं।[4] ऐसी रचनाओं के कतिपय वर्णन इस प्रकार हैं—

---

१. रघुनाथ रूपक गीतां रो, कवि मंछ कृत, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी पृ० ३४२।
२. अचलदास खींची री वचनिका, ह० प्र० न० ६६ अ० सं० ला० बीकानेर।
३. प्राचीन वार्ता र० का० सं० १८००, राजस्थानी भाषा और साहित्य ले० पं० मोतीलाल जी मेनारिया पृ० ३६३।
४. कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रंथ, अगरचन्द नाहटा, राजस्थान भारती भाग-३, अंक ३-४, जुलाई १९५३।

वर्षाकाल वर्णन—

विस्तरिउ वर्षाकाल जे पंथी तणउ काल नाठउ दुकाल ।
जिणिई वर्षाकालि मधुर ध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ ।
जाणे सुभिक्ष भूपति आवतां जय ढक्का वाजइ ।''[1]

वसन्त ऋतु वर्णन—

तिसिह आविउ वसंत, हूउ शींत तणउ अंत ।
दक्षिण दिशि तणउ शीतल वाउ वाइं, विहसइं वणराइं ।।

दोहा—सव्वे भला मासड़ा, पण वइसालइ न तुल्ल ।
जे दवि दाधा रुखड़ां, तींह माथइ फुल्ल ।।[2]

वर्षाकाल वर्णन—

ऊमटी घटा, बादल होइ एकठा, पड़ई छटा, भाजइ मटा,
भीजइ लटा ।
मेह गाजइ, जाणे नाल गोला वाजइ, दुकाल लाजइ, सुवाव
वाजइ, इन्द्र राजइ, ताप पराजइ ।[3]

वर्षाकाल वर्णन—

वर्षाकाल हुउ, वहितौ रहिउ कुयउ, वादि पाणी भरतारया,
बादल उनया ।

मेघ तणा पाणी वहै, पंथी गांमइ जाता रहै ।
पूर्व ना वाजइ वाय, लोक सहु हर्षित थाय ।
आकाश घड़हड़ै, खाल खड़हड़े, पंखी तड़फड़इ,
वड़ा माणस लड़थड़इ ।[4]

रसवती वर्णन—

उपलइ मालि, प्रसन्नर कालि । भला मंडप निपाया, पोयणी नै पाने छाया ।

---

१. वाग्विलास राजस्थान भारती, कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रंथ, ले० अगरचन्द नाहटा भाग-३ अंक ३-४ जुलाई १९५३, पृ० ४१ ।
२. वही पृ० ४१ ।
३. कुतुहलम्, पृ० ४३ ।
४. समाश्रृंगार, पृ० ४४ ।

केसर कुंकुम ना छड़ा दीधा । मोती ना चोक पूर्या ।
ऊपरि पंच वर्णी चूंदवा बांध्या अनेक रूपे आछी परियछी ना रंग माच्या ।

फूलां ना पगर भर्या, अगर ना गंध मंचरया ।[1]

खीची गंगेव नींबावत रो वेपारो—

"तठा उपरांयत गंगेव नींबावत बाहर पधारे छै, सू किण भांत रौ छै ? ऊगतो सूरज, पावासर रौ हांस, कुवरांवत कुंवर जल्हर जवाब । अहमेव जुजठल ज्यूं साच, दुरवासा वाच, ग्यान रो गोरख, सहदेव ज्यूं सारी वात समरथ, अरजुन ज्यूं बांण, करण ज्यूं दांन पांण, वत्तीस आखड़ी रो निवाहणवार, वैरिया विभाड़ण-हार, पर-भोम पंचायण, धण दियण, जस लियण, कलायरो मोर, नूवै मीनै गात, केसरिया पोसाख कियां, पांच हाथियारां बाधां आंण घोड़ै असवार हुए छै ।[2]

४. अभिलेखों का गद्य

अभिलेखीय गद्य के अन्तर्गत शिलाभिलेखों, ताम्रपत्रों, सूरहों और पट्टों परवानों के गद्य का समावेश होता है । शिलालेख और ताम्रपत्र अधिक काल तक सूरक्षित रहते हैं इसलिये प्राचीनतम राजस्थानी गद्य नवीन खोज में विक्रमी संवत् १२८० का प्राप्त हुआ है—

पंक्ति १. "समत १२८० वेरखे मती माह सुद्ध २ राग—
,, २. इ कुसलो गारवनत काम आयो छै गा धनैस—
,, ३. सर माह रगड़ कुसलो रणधीर झुझार—
,, ४. हवा छै पाता अरपीयो रै वैरे महे कम या—
,, ५. या भटी कस (ल) संघ अखराज तरै म—
,, ६. ह डळ "काम यया छ ।[3]"

वि. सं. १४७८ के एक ताम्रपत्र का लेख इस प्रकार है—

"श्री राव चूंडाजी रो दत बड़ली गांव ।
प्रोयत सादा नै दीधो संवत् १४ व········

---

१. मुक्कलानुप्रास, राजस्थान भारती, भाग-३, अंक ३-४ जुलाई, १९५३, पृ. ४७, कतिपय वर्णनात्मक राजस्थानी गद्य ग्रंथ ले. अगरचन्द नाहटा ।
२. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग १, सं. नरोत्तमदासजी स्वामी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ।
३. नाथूसर, बीकानेर का शिलालेख, वरदा, विसाऊ वर्ष ४, अंक ३, पृष्ठ ३ ।

रस आठतरो काती सुद पूनम रै ।
दिन बार सूरज पुस्करजी मांथै ।
पुण्यारथ कीदो महराज चूंडाजी ।
दुवो तेवीस हजार बीगा जमीन ।
म समेत इश्वर प्रीतये ।
गांव दीधौ हिन्दू नै गऊ मुसलमा ।
सूर माताजी चामुडांजी सूं वेमुख ।
आल-औलाद अणारी कोई गोती पोती ।
ईश्वर सूं बेमुख प्रोयत सादा वै ।"[1]

संवत् १५३२ के तम्रपत्र का गद्य इस प्रकार है—

"धरती बीघा तीन सै सूर प्रब में उदक आघाट श्री रामा अर्पण कर देवाणी सो अणी जमी रो हांसल भोग डंड वराड़ लागत व लगत कुड़ा नवाण रुख वरख आँबा महुड़ा मेर को खड़म सरव सुदी थारा बेटा पोता सपुत कपुत खार्यां पायां जायेला ।"[2]

संवत् १६४२ में बारहठ लखा जी द्वारा कुलगुरु गंगाराम जी को दिये गये परवाने के राजस्थानी गद्य का उदाहरण इस प्रकार है—

परवाना

"लीखावतां बारहटजी श्री लखोजी समसत चारण वरण वीस जात्रा सीरदारां सूं श्री जे माताजी की वांचज्यों अठे तपत आगरा श्रीपातसाही जी श्री १०८ श्री अकबर साहजी रा हजुरात दरीखांना माहीं भाट चारणां रा कुल री नंदीक कीधी जण वषत समसत राजेसुर हाजर था वाका सेवागीर वी हाजर था जकां सुण अर मोसु समंचार कहा जद सब पंचा री सला सु कुल गुरु गंगारामजी प्रगणै जेसलमेर गांव जाजीया का जका ने अरज लीष अठे बुलाया गुरु पधारया श्री पात साहजी नी रुवकारी में चारण उत्पत्ती सास्त्र सिवरहस्य सुणायौ पंडतां कबुल कीधो जण पर भाट झुटा पड़या गुरां चारण वंस री पुषत राखी....... माफक हाती लाष पसाव प्रथक दीघो गांव की अवेज बावन हजार बीघा जमी ऊजेण के प्रगने दीधी

१. वड़ली ग्राम से प्राप्त राव चूड़ा का ताम्रपत्र, मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग, ले. विश्वेश्वर नाथ रेऊ पृ. ६५ ।

२. राजस्थानी भाषा और साहित्य, ले. पं. मोतीलालजी मेनारिया; पृ. २७४ ।

जलण रो तांबापत्र श्री पातसाहजी का नांव को कराय दीधो अण सवाय आगा सुं चारण बरण समसत पचां कुलगुरु गंगारामजी का बाप दादा ने ब्याव हुवे जकण में में कुल दापा रा रुपीया १७॥) और त्याग परट हुवे जीण मां मोतीसरां को नांवो वंधे जीण सु दुणों नांवो कुलगुरु गंगाराम का बेटा पोता पायां जासी संमत १६४२ रा मती माहा सूद ५ दसकत पंचोली पंनालाल हुकम बाहरठजी का सु लीखी तखत आगरा समसत पंचा की सलाह सू आपांणां या गुरु सूं अधीकता दुजो नहीं छै।[1]"

५. व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका आदि विषयक गद्य

राजस्थानी भाषाओं में व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष, टीका, स्तवन आदि विषयक गद्य भी विभिन्न लेखकों द्वारा प्रचुर परिमाण में लिखा गया। अनेक राजस्थानी महाकाव्यों में भी गद्य के लेखन उपलब्ध होते हैं। कतिपय उदारहण इस प्रकार हैं—

"ज्ञानाचारि पुस्तकं पुस्तिका संपुट संपुटिका टीपणां कवली उतरी ठवणी पाठा दोरी प्रभृति ज्ञानोपकरण अवज्ञा, अकालि पठन अतिचार विपरीत कथनु उत्सूत्र प्ररुपणु अश्रद्धधांन—प्रभृतिकु आलोयहु।"[2]

स्वर केता १४ समान केता १० सवर्ण १० हृस्व ५ दीर्घ ५ लिगु ३ पुल्लिगु स्त्रीलिगु, नपुंसक लिगु, भयउ, पुल्लिगु भली स्त्रीलिगु, भलु नपुंसक लिगु।

बाल शिक्षा व्याकरण, ठाकुर संग्रामसिंह कृत संपादक मुनि श्री जिनविजयजी, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर।

"पछइ सुंम दिहाउइ जिणि वातरा संवण जोईजइ सु वात कागलि लिपि नइ आप तीरें राखीजइ। चक्की घड़ी॥ आधी थकइ संवण लइ वैसीजइ तारा निरमला हुवै अर ध्रूरउ तारउ रुड़ॉ दीसइ तो लग वैसीजइ द्रू रा तारा परगट हूवा पछइ ऊठीजइ जठा विचीं कोई संवण बोलइ सु विचारी जइ।"[3]

"आसोज आवता ही नभ कहतां आकास थै बादल दूरि हुआ। पृथी तै पंक कहतां कादौ दूरि हुऔ जल की गुड़लता दूरि हुइ। निर्म्मल हूओ। ताको दृष्टान्त जिम सतगुरु मित्यां थै जाणीजै छै मनुष्य कौ सतगुरु मिल्या ग्यान की दीपति

---

१. राजस्थानी शब्दकोष सं० सीताराम लालस संपादकीय प्रस्तावना, पृ० १६३।

२. आराधना (संवत १३३०) प्राचीन गुजराती गद्य-संदर्भ, मुनि जिनविजय, पृष्ठ—२१८-२१६।

१. शकुन ग्रंथ, लि० का० वि० सं० १६२६-१६३३, अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर, ह० लि० ग्रंथ सं० ६६।

हुई। इहां आसोज मिल्या थै आगनि माहे जोति अधिक हुई छै। सु इहै मानो ग्यान की दीपति हुई छै।"[1]

"राजा कान्हड़दे तणइ कटकि पाछिलइ पुहरि कडाहि चडइ। बाज पड़ई। सिहथी बीड़ा। प्रवाहि घोडा पडपत्ता न सहइ। थानांतरि वहिलां सुपाचण चाल्यां। कंठलीया किस्या। भंडार भरीया। आलोचि आतमा नइ आव्या। मन्त्र मुहाडि हुई।"[2]

(ख) नवीन राजस्थानी गद्य

राजस्थानी साहित्य में नवीन युग के जन्मदाता महाकवि सूर्यमल हैं। इन्होंने अपने वंश–भास्कर में पद्य के साथ ही गद्य भी अनेक प्रसङ्गों में लिखा है। इनकी भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों का भी व्यवहार हुआ है—

"सो राजा, नै आपरा प्राण री औषध अनंगसेना जांणि अवरोध लाय रांणी है अरथ निवेदन कीधां। रांणी तो कलिजुग रो रूप एहा अभिरूप अवनीस रौ तिरस्कार करि सुद्धांत रै आश्रित अनेक जन रहै जिकां में कोई दो ही लोक रो खोवणहार ठालियो जिण री संगति रै प्रभाव स्वर्ग लोक रा मार्ग मुद्रित कराया कुंभीपाक रो निवास भालियो सो आपरा स्वामी रो दीधो अपूर्व चमत्कारिक फल राणी अनंगसेना नैं जार रै भेट कीधो।"[3]

सूर्यमलजी हाड़ौती प्रदेश में बूंदी के निवासी थे। इन्होंने अपने व्यक्तिगत पत्र हाड़ौती बोली में लिखे हैं।[4] किन्तु उक्त उदाहरण से प्रमाणित होता है कि इन्होंने साहित्यिक गद्य राजस्थानी के टकसाली रूप रूप में ही लिखा है।

आधुनिक काल के आरम्भ में राजस्थानी गद्य के अनेक ग्रंथ लिखे गये जिनमें दयालदास सिंढायच कृत "राठौड़ां री ख्यात" प्रमुख है। गोपालदान कविया रचित "शिखर वंशोत्पत्ति" (र० का० १६२६) महाराजा मानसिंह कृत 'रतना हमीर री

१. लाखा चारण कृत वि० सं० १६७३ में लिखित वेलि क्रिसन रुकमणी री टीका, हिन्दुस्तानी, ऐकेडमी इलाहाबाद पृष्ठ—७६५।

२. कान्हड़दे प्रबन्ध, र. का. सं० १५१२, राजस्थान प्राच्य-विद्या-प्रतिष्ठान, जोधपुर, पृष्ठ—४०।

३. "वंशभास्कर", जोधपुर, राजस्थानी शब्द–कोष, सम्पादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ १६६।

४. वीर सतसई, सं० डॉ० कन्हैयालालजी सहल, पतरामजी गौड़ और ईश्वरदानजी आसिया, सम्पादकीय भूमिका।

बात' और कविराव बख्तावर कृत 'केहर प्रकाश' (र० का० वि. सं० १९६६) में भी राजस्थानी गद्य के प्रयोग पर्याप्त मात्रा में हुए हैं—

"पीछे आलमगीरजी हाथी सूं उतरिया, अरु फौज मांय फिरै है। आप रा काम आया तथा घायला नूं देखै है। आपरी तरफ रा नू उठावै है, पाटा बांध जावतो करावै है। तथा डोलियां में घालै है, बा माहू मूजै री तरफ रां नूं मारै है। अरु बूंदी रा राव राजा सत्रसालजी बावांपूर हुवा पड़िया है। जिसै आलमगीरजी गया। सूं मूहड़ै ऊपर हाथ फेरियो, अरु पांणी पायो। सावचेत कर अमल दियो। तद चेतो हुवो, पछै आलमगीरजी फुरमायो जो रावजी अरज करो।"[1]

"स्याम ताज कफनी कमंडल में नीर। डाटी सुपेत सेत सुवरण सरीर। मोकल राव आतो देखि माथा को नवायो, साई स्यां भुरानी सेत नामो पथ पायो। जंगल में चरै छी गो अव्याई ओटी आई, मोकल का कनां सूं सेत चीपी में दुहाई।"[2]

"सुवड़ जठै बोलीया नवेली सहज मारे ही सिखावज्यो। पण बाग वन सरोवर कदे भी मत जावज्यो। जावेला बाग तो पिक सुक अली उड़ जावसी ने बिंबफल, श्रीफल, अनाड़, मेवा जो सुखावसी, जावेला जो बन तो खंजन कपोत चोंच चूरेला।"[3]

आधुनिक काल में अनेक लेखक राजस्थानी गद्य मे उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, आलोचना और अनुवाद आदि लिखते रहे हैं। इनके ग्रंथ प्रकाशित भी हुए हैं और जनता में लोकप्रिय बने हैं। ब्रिटिश-काल में प्रकाशन-सम्बन्धी कार्यों पर राजस्थान में कड़े प्रतिबंध रहे, जिनसे पत्र-पत्रिकाओं और नवीन शैली की रचनाओं का पर्याप्त मात्रा में प्रकाशन नहीं हो सका। भारतीय स्वाधीनता और राजस्थान के एकीकरण के पश्चात राजस्थान में नवीन राजस्थानी गद्य-लेखन को बल मिला है। परिणामस्वरूप प्रतिवर्ष अनेक राजस्थानी गद्यात्मक रचनाएं प्रकाशित होती जा रही हैं।

आधुनिक काल के कतिपय गद्य लेखक इस प्रकार है—

उपन्यास-लेखक—

शिवचन्द्र भरतिया (कनक सुन्दर आदि), श्रीलाल जोशी (आभैपटकी), विजयदान देथा (टीडो राव, सात राजकुमार, आदि)।

---

१. "दयालदास री ख्यात", अनूप संस्कृत पुस्तकालय, बीकानेर।

२. "सिखर वंशोत्पत्ति", राजस्थानी शब्द-कोष, संपादकीय प्रस्तावना, पृष्ठ २००।

३. केहर प्रकास, वही।

कहानी लेखक—

मुरलीधर व्यास, रानी लक्ष्मी कुमारी चूंडावत, नरसिंह राजपुरोहित, श्री चन्द्रा माथुर. भंवरलाल नाहटा. दीनदयाल ओझा, सौभाग्यसिंह शेखावत आदि ।

नाटक लेखक—

शिवचन्द्र भरतिया. सूर्यकरण पारीक, श्रीनाथ मोदी, पूरणमल गोयनका, मनमोहन शर्मा. भगवती प्रसाद दारूका, गोविन्द माथुर (सतरङ्गिणी), पुरुषोत्तम-लाल मेनारिया (जुग पलटो , निरंजननाथ आचार्य (नेहरी झगड़ो), भरत व्यास (ढोला मरवण), पं० गिरधारीलालजी शास्त्री, चन्द्रशेखर भट्ट, आज्ञाचन्द भण्डारी, गणपतलाल डांगी आदि ।

निबन्ध लेखक—

गुलाबचन्द नागौरी और मारवाड़ी हितकारक पत्र का लेखक मंडल, ठाकुर रामसिंह, अगरचन्द नाहटा, जयनारायण व्यास, रावत सारस्वत और मरुवाणी का लेखक-मंडल, किशोर कल्पनाकांत और ओलमो पत्र रतनगढ़ का लेखक मण्डल, और सौभाग्यसिंहजी शेखावत आदि ।

—:०:—